जैव प्रौद्योगिकी पाठमाला

सत्यमेव जयते

जैव प्रौद्योगिकी
अनुसंधान एवं विकास

लेखकः
डॉ0 गोपाल पांडेय
एवं
हेमलता पंत

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

जैव प्रौद्योगिकी : अनुसंधान एवं विकास

लेखक

डॉ० गोपाल पांडेय

(बायोवेद शोध एवं प्रसार केंद्र, इलाहाबाद)

एवं

हेमलता पंत

(बायोवेद शोध एवं प्रसार केंद्र, इलाहाबाद)

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Secondary and Higher Education)
Government of India

2003

© भारत सरकार, 2003
© Government of India, 2003

प्रथम संस्करण : 2003

प्रकाशक :

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड 7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110 066

बिक्री का पता :

1. प्रकाशन नियंत्रक
प्रकाशन विभाग, भारत सरकार,
सिविल लाइन्स,
नई दिल्ली-110 054

आयोग के अध्यक्ष

1. डॉ0 दौलत सिंह कोठारी, (1961-1965)
2. डॉ0 निहालकरण सेठी, (1965-1966)
3. डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद, (1966-67)
4. डॉ0 एस. बालसुब्रह्मण्यम्, (1967-68)
5. डॉ. बाबूराम सक्सेना, (1968-70)
6. श्री कृष्ण दयाल भार्गव, (1970)
7. श्री गंटि जोगि सोमयाजी, (1970-1971)
8. डॉ0 पी. गोपाल शर्मा, (1971-75)
9. प्रो0 हरबंशलाल शर्मा, (1975-80)
10. प्रो0 मलिक मोहम्मद, (1983-1987)
11. प्रो0 सूरजभान सिंह, (1988-1994)
12. प्रो0 प्रेम स्वरूप सकलानी, (1994-1998)
13. डॉ0 हरीश कुमार (1998)
14. डॉ0 राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव (1998-2001)
15. डॉ0 हरीश कुमार (2001-2003)

समन्वय तथा संपादन

प्रमुख संपादक
डॉ0 पुष्पलता तनेजा
अध्यक्ष

संपादक
दुर्गा प्रसाद मिश्र
वैज्ञानिक अधिकारी

पुनरीक्षक
डॉ0 श्याम प्रकाश
प्रधान वैज्ञानिक अधिकारी

प्रकाशन
श्री राम बहादुर
उप निदेशक
डॉ0 पी0 एन0 शुक्ल
वैज्ञानिक अधिकारी
श्री आलोक वाही
कलाकार

आमुख

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा-माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के लिए तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीन सन् 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दाली आयोग की स्थापना की थी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अनेक परिभाषा-कोशों, चयनिकाओं, पाठमालाओं तथा विश्वविद्यालय स्तरीय हिंदी पुस्तकों का निर्माण किया है। अनेक पाठ्य पुस्तकें, शब्द-संग्रह, परिभाषा कोश, चयनिकाएं, पत्रिकाएं, पाठमालाएं आदि प्रकाशित हो चुकी हैं।

पाठमालाओं के निर्माण में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि उसकी विषय सामग्री उपयोगी तथा उद्यतन हो और भाषा सरल, बोधगम्य एवं आकर्षक हो ताकि अध्यापक भी हिंदी माध्यम से अपने-अपने विषय को पढ़ाने में सक्षम हो सकें।

प्रस्तुत पाठमाला "जैव-प्रौद्योगिकीः अनुसंधान एवं विकास" बायोवेद शोध एवं प्रसार केंद्र, इलाहाबाद के उपनिदेशक डॉ. गोपाल पांडेय और वैज्ञानिक सुश्री हेमलता पंत द्वारा लिखी हुई है जिसका पुनरीक्षण राष्ट्रीय पादप जैव-प्रौद्योगिकी अनुसंधान केंद्र के प्रधान वैज्ञानिक डॉ. श्याम प्रकाश ने की है। वस्तुतः यह कार्य लेखकों और पुनरीक्षक के अथक प्रयास से ही संपन्न हुआ है जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

पाठमाला की भाषा सरल, बोधगम्य और प्रवासपूर्ण है। पुस्तक में लेखकों ने हिंदी की मानक शब्दावली का प्रयोग करने का पूरा प्रयास किया है और पुस्तक के अंत में तकनीकी शब्दों की परिभाषाएँ और सूचियाँ भी दी गई हैं।

मुझे विश्वास है कि यह पाठमाला स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

(डॉ0 पुष्पलता तनेजा)
अध्यक्ष

लेखकीय

आधुनिक विश्व नित्य नवीन आयामों तथा आविष्कारों को अपनाकर विकास के रास्ते पर तीव्र गति से अग्रसर है और उसके विकास को संतुलित आधार प्रदान कर रहा है विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी । इसके अंतर्गत जैव-प्रौद्योगिकी विज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है । जैव प्रौद्योगिकी का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है, परंतु हमारी इस पुस्तक में जैव प्रौद्योगिकी पर जो अनुसंधान कार्य हुए हैं या चल रहे हैं, उन पर प्रकाश डाला गया है ।

यह पुस्तक 19 अध्यायों में लिखी गई है। मुख्य रूप से जैव-प्रौद्योगिकी के महत्वपूर्ण क्षेत्रों, जैसे-जीन अभियांत्रिकी, जीन चिकित्सा, पराजीनी पौधे, जंतु, टीका, ऊतक संवर्धन, जैव उर्वरक एवं जैवकीटनाशी, मानव संजीन परियोजना आदि की उपलब्धियाँ, अनुसंधानात्मक और विकासात्मक गतिविधियाँ, नीतियों एवं लक्ष्यों तथा विभिन्न देशों के साथ अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का विस्तृत, सहज, सरल और विश्लेषणात्मक वर्णन किया गया है। इसके साथ भारत के कुछ प्रमुख वैज्ञानिक जो इस क्षेत्र में कार्य किए हैं, उनका संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया है।

इस पुस्तक में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्धारित वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का प्रयोग किया गया है। अभी जैव प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है। यह अधिकांश स्थानों पर अनिश्चयपूर्ण अवस्था में है। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी जब तक कि हिंदी शब्दावली का व्यापक प्रयोग नहीं होने लगता। ऐसी दशा में पाठकों के सुझाव एवं विचार काफी उपयोगी हो सकते हैं और उनसे बहुत-से तकनीकी शब्दों में परिवर्तन एवं सुधार करने में काफी सहायता मिल सकती है।

जैव-प्रौद्योगिकी से संबद्ध सभी विधाओं को विस्तृत रूप से प्रस्तुत करने की पूरी कोशिश की गई है और आशा है कि जैव प्रौद्योगिकी के अनुसंधान एवं विकास से जुड़े हुए पाठकों को इस पुस्तक से पर्याप्त लाभ मिलेगा। पुस्तक को और अधिक उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए पाठकों के स्वस्थ विचारों की हमें सतत् आवश्यकता है।

डॉ. गोपाल पांडेय

एवं

हेमलता पंत

विषय-सूची

1. प्रस्तावना 1
2. परिचय, परिभाषा और वर्गीकरण 4
3. सूक्ष्म जीव 12
4. प्राचीन और नवीन जैवप्रौद्योगिकी 20
5. संगठन 25
6. अनुसंधान तथा विकास 30
7. जीन अभियांत्रिकी 40
8. डी.एन.ए. अंगुलिछाप तकनीक 50
9. अंग प्रतिरोपण एवं जीन चिकित्सा 54
10. टीका (वैक्सीन) 62
11. क्लोनन 66
12. पराजीनी पौधे, जंतु तथा निर्वंश जीन 72
13. ऊतक संवर्धन और उपलब्धियाँ 81
14. जैवउर्वरक और जैवकीटनाशी 90
15. मानव संजीन परियोजना 108
16. अनुसंधान एवं विकास के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य ... 126
17. वैज्ञानिक परिचय 134
18. जैव प्रौद्योगिकी की उपलब्धियाँ 139
19. जैव प्रौद्योगिकी में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग 147

परिशिष्ट

1. तकनीकी शब्दों की परिभाषाएं 149

2. तकनीकी शब्दों की सूचियां 164

3. वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली निर्माण के सिद्धांत.....174

4. आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द-संग्रहों की सूची.... 178

अध्याय - 1

प्रस्तावना

विश्व की जनसंख्या छह अरब तक पहुँच गई है। आगामी 30 से 50 वर्षों में यह बढ़कर 9 अरब तक हो जाने की संभावना है। संपूर्ण भू-भाग का मात्र 2.4% ही भारत को उपलब्ध है, जबकि विश्व की जनसंख्या का 16% भाग भारत में निवास करता है। संभावना है कि भारत की आबादी वर्ष 2050 तक 1 अरब 53 करोड़ 50 लाख हो जाएगी जबकि चीन की आबादी 1 अरब 51 करोड़ 70 लाख होगी। तीव्र दर से बढ़ती हुई विश्व की जनसंख्या ही पर्यावरण असंतुलन का सबसे बड़ा कारण है, जो प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता है। अतः पूरे विश्व के संगठनों को मिलकर एक नया कानून बनाने की जरूरत है जिसमें हर दम्पति को सिर्फ एक ही संतान पैदा करने की कानूनी मान्यता हो, परंतु जुड़वां तथा पूर्ण अस्वस्थ बच्चे होने पर दो रखने की छूट हो।

देश में बढ़ती जनसंख्या की भयावहता को देखते हुए केंद्र सरकार ने 11 मई, 2000 को प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग (नेशनल पापुलेशन

कमेटी) का गठन किया। योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्री के. सी. पंत को इस आयोग का उपाध्यक्ष मनोनीत किया।

बढ़ते हुए औद्योगिकरण, घरों, सड़कों और अन्य संचरनात्मक सुविधाओं के कारण जहाँ उपलब्ध कृषि योग्य भूमि की मात्रा कम होगी, वहीं बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमि पर दबाव भी बढ़ेगा, आनें वाले दशकों में मानव जाति के समक्ष आज की तुलना में कम भूमि पर दो गुना अथवा उससे भी अधिक खाद्यान्न उत्पादन की बड़ी चुनौती है। भारत एक ऐसा देश है जो आज भी इन समस्याओं से जूझ रहा है, खाद्यान्न की माँग पहले से बढ़ रही है क्योंकि मध्यम वर्ग में अधिक एवं अच्छी गुणवत्ता के खाद्यान्न की माँग में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। लोगों के रहने के लिए भवनों का निर्माण करने हेतु काफी भूमि खाली कराई जा रही है तथा काफी पेड़ गिराए जा रहे हैं। इसके लिए जंगली भूमि को लक्ष्य बनाया जा रहा है। हाल के आकड़ों से पता चलता है कि कृषि उत्पादकता वास्तव में कुछ क्षेत्रों में कम हो रही है। अन्य देशों द्वारा भी इन्हीं प्रकार की चुनौतियों का सामना किया जा रहा है।

भारत में सन् 2050 तक खाद्य संकट की अत्यंत विकट स्थिति उत्पन्न हो सकती है। एक अनुमान के अनुसार सन् 2001 में एक अरब से अधिक की जनसंख्या के भोजन के लिए भारत को 1060 लाख टन चावल, 800 लाख टन गेहूँ, 420 लाख टन मोटे अनाज, 220 लाख टन दाल (2500 लाख टन खाद्यान्न), 270 लाख टन तिलहन, 3100 लाख टन चीनी, 1720 लाख टन सब्जी तथा 1300 लाख टन मछली की आवश्यकता होगी और निश्चित रूप से इतना उत्पादन कर पाना काफी मुश्किल है।

एक नवीन हरित क्रांति को लाना और तदनुकूल हमारे खाद्यान्न फसलों के उत्पादन को बढ़ाना आज की सबसे बड़ी चुनौती है। लेकिन हमें इस बात पर पुनः विचार करना चाहिए कि क्या उत्पादन की वहीं परंपरा, प्रक्रिया जिससे हमें हरित क्रांति की प्रेरणा मिली, इस सीमिल समय में उपज में इतनी अधिक वृद्धि ला सकता है? इसकी जगह अधिक खाद्यान्न उगाने के लिए अपनी क्षमता में महत्वपूर्ण विकास हेतु हम जैव तकनीकी का प्रयोग कर सकते हैं। कृषि में जैव तकनीकी अनवरत खेती के लिए नए अवसरों को प्रस्तुत करता है और पर्यावरण पर उसका प्रभाव वर्तमान में प्रयुक्त होने वाली पद्धतियों की तुलना में काफी कम होता है। ये रोजगार के निर्माण और ग्रामीण विकास की संभावनाओं को भी प्रस्तुत करते हैं।

खाद्यान्न आपूर्ति संवेदनशील है और मानव जनसंख्या की वृद्धि अत्यधिक तीव्र है। शहरी विकास व भू-क्षरण के कारण कृषि भूमि दबाव में है। यह पूरी तरह स्पष्ट है कि वर्तमान तकनीक अपनी सीमाओं पर पहुँच चुके हैं। एक विज्ञान के रूप में जैवप्रौद्योगिकी, कृषि, ऊर्जा, स्वास्थ्य, पर्यावरण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

अध्याय - 2

परिचय, परिभाषा एवं वर्गीकरण

जैवप्रौद्योगिकी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ब्रिटेन की लीड्स नगर की नगर परिषद ने 1920 में किया था और इसी समय वहाँ जैवप्रौद्योगिकी संस्था की स्थापना हुई।

जैवप्रौद्योगिकी एक वृहद शब्द है। इसको परिभाषित करने के लिए, हमें उद्योगों में जीव विज्ञान के सारे उपयोगों को आधार बनाना होगा। जीवों का उपयोग करके मानव और प्रकृति के लिए मूल्यवान सामग्रियों का उत्पादन ही जैवप्रौद्योगिकी है।

कोई भी तकनीक जो जीवित प्राणियों या उसके किसी अंश का उपयोग जीवनोपयोगी उत्पादों को बनाने या उनको परिवर्तित करने में लगती है, जैवप्रौद्योगिकी के अंतर्गत आती है। जैवप्रौद्योगिकी से प्राप्त उत्पाद, पेड़-पौधे, जीव-जंतु अथवा विशेष उपयोगों के लिए विकसित सूक्ष्म जीव हो सकते हैं। इन उत्पादों के अनुसार जैवप्रौद्योगिकी को क्रमशः पादप जैवप्रौद्योगिकी, जीव जंतु प्रौद्योगिकी, औद्योगिक एवम् सूक्ष्मजैविकी जैवप्रौद्योगिकी आदि शाखाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है।

जैवप्रौद्योगिकी एक बहुआयमी कौशल और अभियांत्रिकी का नाम है जिसमें सूक्ष्म जीव-विज्ञान, रसायन, भौतिकी, जीन अभियांत्रिकी और पदार्थ विज्ञान की विधाएँ शामिल हैं।

जैवप्रौद्योगिकी सूक्ष्म जीवों, जीवित पादप एवं पशु कोशिकाओं का औद्योगिक उपयोग है। जैवप्रौद्योगिकी में मुख्य रूप से डी. एन. ए. तकनीक, कोशिका तथा ऊतक तंत्र, रोग प्रतिरक्षण एन्जाइम विज्ञान, जैव अभियांत्रिकी, टीका उत्पादन, क्लोनन, किण्वन तथा संबद्ध क्षेत्र आदि सम्मिलित हैं। विकासशील देशों में नये रोजगार पैदा करने तथा प्रदूषणमुक्त और पर्यावरणीय दृष्टि से सुरक्षित प्रौद्योगिकियों के विकास में नई प्रक्रियाओं के उपयोग की महत्वपूर्ण भूमिका है। जीव-जंतु,पौधों से अधिकाधिक लाभ उठाने के लिए प्रयोग की जाने वाली तकनीक जैवप्रौद्योगिकी कहलाती है। इसके उपयोग से अनेक क्षेत्र जैसे-खाद्यान्न, ऊर्जा, स्वास्थ्य, पशुपालन, पर्यावरण आदि में क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं।

जैवप्रौद्योगिकी का मुख्य लक्ष्य आर्थिक लाभ और मानवीय कल्याण के लिए विभिन्न विषयों, जैसे- जीव-विज्ञान, आनुवंशिकी, कोशिका विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, कृषि विज्ञान, विषाणु विज्ञान, जैव रसायन, अभियांत्रिकी, संगणक विज्ञान का व्यापक प्रयोग है। इसके साथ प्रबंधन शास्त्र, अर्थशास्त्र, समाज और राजनीति विज्ञान को भी सम्मिलित करना होगा जो इसके अनुप्रयोगों को विपणन प्रौद्योगिकी में परिवर्तित करने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इनके सहयोग के बिना जैवप्रौद्योगिकी की उचित उपयोगिता नहीं होगी।

जैवप्रौद्योगिकी की उपरोक्त परिभाषा के अतिरिक्त विभिन्न संगठनों एवं वैज्ञानिकों ने अपनी-अपनी अभिरुचि और पूर्वाग्रहों के आधार पर उसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। जो निम्नलिखित है :

- डेकेमा, जर्मन (1976) के अनुसार — जैवप्रौद्योगिकी का संबंध जैविक गतिविधियों का तकनीकी और औद्योगिक उत्पादन में उपयोग से है। इसमें सूक्ष्म जैविकी, जैव रसायन, प्रौद्योगिकी रसायन विज्ञान (अथवा रसायन अभियांत्रिकी) और प्रक्रिया अभियांत्रिकी का समावेश होता है।
- संयुक्त कार्यकारिणी समिति का प्रतिवेदन, ब्रिटेन (1980) के अनुसार—जीवाणुओं, जैविक तन्त्रों अथवा जैविक प्रक्रमों का औद्योगिक उत्पादन और लोकसेवी उद्योगों में अनुप्रयोग जैवप्रौद्योगिकी है।
- कनाडा के विकास कार्यक्रम (1981) के अनुसार—जीवाणुओं, पादपों अथवा प्राणि कोशिकाओं अथवा उनके घटकों का उत्पादन और लोक सेवा हेतु उपयोग जैवप्रौद्योगिकी है।
- विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लिए मूल्यांकन और भविष्यवाणी उपकार्यक्रम शोध तथा क्रियाकलाप (1981)—जीवाणु और जैव रासायनिक कारकों द्वारा वांछित उत्पादों की प्राप्ति और लोक सेवा से संबंधित विज्ञान।
- यूरोपीय जैवप्रौद्योगिकी संगठन (1981)—जैव रसायन विज्ञान, सूक्ष्म जैविकी और अभियांत्रिकी के समन्वित उपयोग से सूक्ष्म जीवाणु अथवा संबंधित ऊतक, कोशिकाओं और उसके घटकों की क्षमताओं का औद्योगिक स्तर पर उपयोग।

- अंतर्राष्ट्रीय शुद्ध और प्रयुक्त रसायन संघ (1981) के अनुसार- जैव रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, सूक्ष्म जैविकी और रसायन अभियांत्रिकी का औद्योगिक प्रक्रमों और उत्पादों हेतु अनुप्रयोग।
- जैवप्रौद्योगिकी : अंतर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति और परिप्रेक्ष्य-आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (1982)--अभियांत्रिकी और विज्ञान के सिद्धांतों के उपयोग द्वारा जैविक कारकों की सहायता से पदार्थों की प्राप्ति और लोकसेवा।
- कृषि विभाग संयुक्त राज्य अमेरिका (1988) के अनुसार - औद्योगिकीय प्रक्रमों में जीवाणुओं अथवा उनकी जैविक क्रियाओं का अनुप्रयोग ही जैवप्रौद्योगिकी है।
- अमेरिकी रसायन संस्था (1988) — भौतिकविज्ञान, प्राणि विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के समन्वित उपयोग द्वारा ऐसी शक्तिशाली प्रक्रियाओं और ऐसे साधनों का विकास जिनसे उद्योगों में प्रौद्योगिकी प्रक्रमों की सहायता से व्यापारिक उत्पादों की प्राप्ति हो सके।
- अमेरिकी रसायन संस्था (1988) — ऐसी कोई भी तकनीक जिसमें जीवाणु अथवा उसके घटकों द्वारा उत्पादों का निर्माण अथवा रूपांतरण और पादपों और जीवधारियों में सुधार होता है अथवा विशेष उपयोग हेतु नए जीवाणुओं का विकास किया जाता है, जैवप्रौद्योगिकी है।
- प्रौद्योगिकी मूल्यांकन विभाग, संयुक्त राज्य अमेरिका कांग्रेस की रिपोर्ट 1981--औद्योगिक प्रक्रमों में जीवाणुओं अथवा उनके घटकों का उपयोग : प्रयुक्त आनुवंशिकी का सूक्ष्म जीवाणुओं, पादपों और जीवों का प्रभाव।

- जैवप्रौद्योगिकी : डच परिप्रेक्ष्य (1981) — प्रयुक्त जैविक प्रक्रियाओं का विज्ञान अथवा जीवाणुओं और उनके सक्रिय घटकों अथवा उच्च वर्ग के जीवधारियों की कोशिकाओं और ऊतकों पर आधारित प्रक्रमों का विज्ञान।
- डेजी बुलॉक 1987--जैविक कार्यक्रम जैसे जीवित अथवा मृत कोशिकाओं और उनके घटकों के नियंत्रित और विवेचित उपयोग द्वारा लाभप्रद औद्योगिक उत्पादन और लोक सेवा कार्य।

जैव-प्रौद्योगिकी का वर्गीकरण

जैवप्रौद्योगिकी को हम औद्योगिक क्षेत्र, परिणाम और मूल्य, तथा प्रौद्योगिकी के स्तर के आधार पर वर्गीकरण कर सकते हैं। प्रथम वर्ग का आधार उत्पादनों का रासायनिक स्वरूप है जबकि दूसरे वर्ग का आधार परिणाम और उसका लागत मूल्य है। तीसरा वर्ग प्रौद्योगिकी की सुगमता और क्लिष्टता पर आधारित है।

जैवप्रौद्योगिकी के मुख्यतः तीन आधार हैं जो निम्न हैं :

(i) औद्योगिक आधार
(ii) परिमाण और मूल्य
(iii) प्रौद्योगिकी का स्तर

(i) औद्योगिक आधार

औद्योगिक आधार मुख्यतः पाँच प्रकार के होते हैं जो निम्नलिखित है :

(क) रसायन (ख) औषधि (ग) ऊर्जा (घ) कृषि (ङ) खाद्य पदार्थ (तालिका - 1)

तालिका - 1

क्र. सं.	प्रकार	उत्पाद
(क)	रसायन	एसीटोन, ब्यूटेनॉल, इथेनॉल, कार्बनिक अम्ल, एन्जाइम, सुगंध, बहुलक, धातुएं
(ख)	औषधि	एन्टीबायोटिक, निदान कारक, एन्जाइम अवरोधक, स्टेरॉयड, टीके, हारमोन
(ग)	ऊर्जा	जैव पदार्थ, एल्कोहल, मेथेन (बायोगैस)
(घ)	खाद्य पदार्थ	ऐमीनो अम्ल, पेय पदार्थ, यीस्ट (खमीर), नए खाद्य पदार्थ, मशरूम, स्टार्च, ग्लूकोज़, उच्च फ्रक्टोज सिरप, जीव विष अपनयन, निवारण
(ङ)	कृषि	पशु आहार, साइलो-संरक्षण, कम्पोस्टिंग, नाइट्रोजन यौगिकीकरण, पशु टीके, जैविक कीट नाशकी, पादप कोशिका और ऊतक संवर्धन, आनुवंशिक रूपांतरण

(ii) परिमाण और मूल्य

परिमाण और मूल्य में मुख्यतः चार भाग हैं जो निम्नलिखित है :

(क) लोक सेवा (ख) अधिक परिमाण, कम मूल्य (ग) अधिक परिमाण, मध्यवर्ती मूल्य (घ) कम परिमाण, अधिक मूल्य (तालिका - 2)

तालिका - 2

क्र. सं.	प्रकार	उत्पाद
(क)	लोक सेवा	विश्लेषण के उपकरण, अपशिष्ट निस्तारण, जल उपचार, अपशिष्ट प्रबंधन
(ख)	अधिक परिमाण, कम मूल्य	पशु आहार, जैव पदार्थ, एल्कोहल, मीथेन, जल उपचार, अवजल संशोधन, उपचार
(ग)	अधिक परिमाण, मध्यवर्ती मूल्य	अमीनों एवं कार्बनिक अम्ल, एसिटोन, ब्यूटेनॉल, खाद्य पदार्थ, यीस्ट, धातुयें, बहुलक
(घ)	कम परिमाण, अधिक मूल्य	प्रतिजैविक और अन्य स्वास्थ्य एन्जाइम, विटामिन

(ii) प्रौद्योगिकी का स्तर

इसमें मुख्यतः तीन भाग है जो निम्नलिखित है :

(क) उच्च स्तर (ख) माध्यमिक स्तर (ग) निम्न स्तर (तालिका - 3)

तालिका - 3

क्रं.	प्रकार	उत्पाद
(क)	उच्च स्तर	खाद्य संयोजी, मानव खाद्य, स्वास्थ्य रक्षक
(ख)	माध्यमिक स्तर	किण्वित खाद्य, पेय, जैव उर्वरक, कीटाणुनाशी, एन्जाइम
(ग)	निम्न स्तर	प्रदूषण नियंत्रण, स्वच्छता, ईंधन, पशु आधार

अध्याय - 3

सूक्ष्मजीव

जैवप्रौद्योगिकी के बारे में हमें पूर्ण जानकारी उसी समय हो सकती है जब हमें सूक्ष्मजीवों के बारे में पूर्ण ज्ञान हो। हम इस अध्याय में सूक्ष्मजीवों के बारे में कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का समावेश कर रहे हैं। जिससे जैवप्रौद्योगिकी को समझने तथा इसको इस्तेमाल करने में किसी प्रकार की समस्या न आए क्योंकि जैवप्रौद्योगिकी पूर्ण रूप से सूक्ष्म जीवों पर निर्भर है। सूक्ष्म जीवों का उपयोग करके उपयुक्त प्रौद्योगिकी के माध्यम से औद्योगिकीकरण करना ही जैवप्रौद्योगिकी का मुख्य उद्देश्य है। इसी को ध्यान में रखते हुए सूक्ष्मजीवों का महत्वपूर्ण अध्याय जोड़ा गया है।

सूक्ष्मजीवों को अंग्रेजी में माइक्रोआगेनिज्म या माइक्रोब्स कहते हैं। मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही सूक्ष्म जीव समूह मानव से संबंधित रहे हैं और उसके जीवन में सकारात्मक व नकारात्मक भूमिकाएं निभाते आएं हैं। अतीत में मानव को सूक्ष्मजीव समूह द्वारा फैलने वाली महामारियों के परिणामस्वरूप बड़े कष्ट उठाने पड़े, किंतु इन सूक्ष्म संरचनाओं के बारे में कोई ज्ञान न होने से

मानव इन्हें प्रेतआत्माओं का प्रकोप समझता रहा। हालैंड के व्यापारी 'ल्यूवेनहॉक' ने तीन शताब्दी से भी अधिक पहले मैंइग्नीफाई ग्लास का निर्माण किया और बाद में दाँतों से उतरने वाले सफेद पदार्थ के अध्ययन में उसका उपयोग किया। यह देखकर ल्यूवेनहाँक को बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनमें सूक्ष्म कोशिकीय जीवाणु विद्यमान थे जिन्हें हम आज 'जीवाणु' कहते हैं। जीवाणु आकार की दृष्टि से दो प्रकार के होते हैं — एक हैं अणुवीक्षण यंत्र (माइक्रोस्कोप) से देखे जा सकने वाले जीवाणु (बैक्टीरिया) जैसे कोकाई या बैसिलस। ये विशेष रूप से हवा, पानी व खाद्य पदार्थों में पाए जाते हैं। दूसरे प्रकार के सूक्ष्मजीव जो अणुवीक्षण यंत्र से भी स्पष्टता से नहीं दिखाई देते, 'विषाणु' (वाइरस) कहलाते हैं। ये अधिकतर हवा में पाए जाते हैं और अनेक रोग उप्तन्न करते हैं। जीवाणु विभिन्न जैविक क्रियाओं में सहायक होते हैं। सूक्ष्म जीवविज्ञान, जैवप्रौद्योगिकी का एक और अभिन्न अंग है। ये खाद्य पदार्थ, उद्योग, औषधि निर्माण और पशु मानव चिकित्सा में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। बड़े पैमाने पर पदार्थों के उत्पादन के लिए कुछ सूक्ष्मजीवों को जीन प्रौद्योगिकी से नियमित किया जाता है। सूक्ष्मजीव नाना भाँति की भूमिका अदा करते हैं और असंख्य तरह से मानव समाज पर प्रभाव डालते हैं।

सूक्ष्मजीवों के बहुआयामी उपयोग

'सूक्ष्म जीव विज्ञान' अत्यंत व्यापक विषय के रूप में उभरा है जिसके अंतर्गत पाँच मुख्य सूक्ष्मजीव समूहों : (1) विषाणु (वायरस) (2) जीवाणु (बैक्टीरिया) (3) फफूंदी (फंजाइ) (4) शैवाल (एलगी) एवं (5) प्रोटोजोआ की विभिन्न शाखाएं-प्रशाखाएं सम्मिलित हैं। सूक्ष्मजीव

विज्ञान के बुनियादी व प्रायोगिक दोनों ही पहलू हैं और तद्नुसार इन पहलुओं से सम्बन्धित अनेक उपविषय हैं। विषाणु विज्ञान (वायरोलॉजी), कोशिका जीव विज्ञान (सेल बॉयोलोजी), वर्गीकरण विज्ञान, सूक्ष्मजीव आनुवंशिकी, पारिस्थितिकी, रोग प्रतिरक्षाविज्ञान-जैसी शाखाओं का संबंध मूलभूत और शुद्ध अनसुंधान से है। इन सभी शाखाओं में सूक्ष्मजीवाणु के स्वरूप, संरचना, प्रजनन, जैव रसायन, शरीर विज्ञान, रस प्रक्रिया, आनुवंशिक बनावट और पहचान आदि को समझने पर अधिक बल दिया जाता है। इसके अंतर्गत सूक्ष्मजीव समूहों के प्रसार, विभिन्न समूहों और अन्य जीव समूहों जैसे, पौधों, पशुओं व मनुष्यों उनके लाभकारी व हानिकारी प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। सूक्ष्मजीवविज्ञान की अन्य शाखाएं प्रयोगोन्मुखी अधिक हैं और व्यावसायिक समस्याओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करती हैं। इनके अंतर्गत औषधीय सूक्ष्मजीव विज्ञान, खाद्य, दूग्ध सूक्ष्मजीव, कृषि सूक्ष्मजीवविज्ञान और पर्यावरण सूक्ष्मजीवविज्ञान शामिल है।

चिकित्सा में सूक्ष्मजीवों का महत्त्व

चिकित्सा संबंधी सूक्ष्मजीवविज्ञान का संबंध जीवाणुओं से है जो मानव और जीव जंतुओं में विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न करने वाले कारक हैं। चिकित्सा से संबंध सूक्ष्म जीव विज्ञानी संक्रमण (इन्फेक्शन) के लिए उत्तरदायी कारकों का पता लगाता है, सूक्ष्मजीव समूहों और बीमारियों के बीच संबंधों का अध्ययन करता है और बीमारियों को रोकने, उन्हें नियंत्रण करने में और समाप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। रोग प्रतिरक्षा विज्ञान का संबंध शरीर के रक्षा तन्त्र से है जो शरीर को बीमारियों से बचाता

है। इसके अंतर्गत तेजी से विकसित हो रहे क्षेत्र शामिल हैं, जैसे एक क्लोनीय प्रतिरक्षी का उत्पादन व उपयोग। प्रतिरक्षा विज्ञान में एलर्जी तथा गठिया जैसे गैर प्रतिरक्षित बीमारियों के स्वरूप और उपचार की समस्याओं से निपटने के उपायों पर विचार किया जाता है।

सूक्ष्म जीवाणुओं का औद्योगिक महत्व

सूक्ष्मजीवविज्ञान का एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र औद्योगिक सूक्ष्म जीव विज्ञान है जिसमें जीवाणुओं का व्यापक रूप में उपयोग किया जाता है। जीवाणु औद्योगिक प्रतिक्रियाओं के आधार हैं और उनका इस्तेमाल ब्रेड, पनीर, बीयर, शराब, **प्रतिजैविक**, विटामिन, एन्जाइम और मानव तथा अनेक महत्वपूर्ण उत्पादों में होता है। वास्तव में आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी सूक्ष्मजीव वैज्ञानिक आधार पर निर्भर है। जीवाणु मूल के एन्जाइमों का उपयोग, चीनी की राब, बेकरी और घरों में काम आने वाले डिटर्जेंट आदि के उत्पादन में किया जाता है।

भोजन में सूक्ष्म जीव का महत्व

खाद्यों में जीवाणु विज्ञान की एक अलग तरह की भूमिका है। अनेक सूक्ष्मजीव समूह ऐसे हैं जो भोजन को नष्ट कर देते हैं, कोई भी खाद्य पदार्थ ऐसा नहीं है जिस पर जीवाणुओं का हमला न हो सके। दूध और दूध से बने उत्पाद, फल, सब्जियाँ, मांस उत्पाद, बेकरी उत्पाद आदि सभी पर किसी एक या दूसरे तरह के जीवाणु के हमले की संभावना रहती है। रोगजनक और विष फैलाने जीवाणु भोजन में पैदा हो सकते हैं और हैज़ा व सैमनलोसिस-

जैसी भोजन से फैलने वाली बीमारियों के प्रसार का माध्यम बन सकते हैं। गर्मी में विषाक्त भोजन के खाने से होनी वाली दुर्घटनाएँ सूक्ष्मजीव समूह की वजह से होती हैं। अतः खाद्य सूक्ष्मजीव विज्ञानियों का संबंध भोजन की विषाक्तता पैदा करने वाले जीवाणुओं के स्रोत, उनकी वृद्धि और उन स्थितियों एवं प्रणालियों के अध्ययन होता है जिसमें जीवाणु जहर पैदा करते हैं। वे ऐसी पद्धतियों का निर्धारण करते हैं जिनसे सूक्ष्मजीवों से भोजन को नष्ट होने से बचाया जा सके। भोजन में रोगजनक जीवाणुओं का पता लगाते हैं। खाद्य सूक्ष्मजीव विज्ञानी पनीर, दही, ब्रेड और अचार-जैसे खाद्य पदार्थ बनाने के लिए भी जीवाणुओं का इस्तेमाल करते हैं। खाद्य संस्करण उद्योग में सूक्ष्मजीव विज्ञानी के दूसरी ओर के कार्य होते हैं विषाक्तता के स्रोतों का पता लगाना और उन्हें समाप्त करना। स्वास्थ्यवर्धक स्थितियों को बनाए रखना, सूक्ष्मजीवों के विकास पर नियंत्रण करना उन्हें यह भी सुनिश्चित करना है कि तैयार खाद्य पदार्थ राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय नियमन संगठनों द्वारा निर्धारित सूक्ष्म जीव वैज्ञानिक मापदंडों के अनुरूप हो।

सूक्ष्म जीवों का कृषि में महत्त्व

सूक्ष्मजीवों की अद्भूत क्षमताओं में एक यह है कि विभिन्न प्रकार के कार्बनिक तत्वों को विकृत कर देता है। उदाहरण के लिए फसलों के अवशेषों पर विभिन्न प्रकार के जीव समूह आक्रमण करते हैं और उन्हें विगलित कर देते हैं जिससे पोषक तत्व घुलनशील रूप में फिर से भूमि में लौट आते हैं। कृषि और मृदा सूक्ष्मजीव विज्ञानी इस प्रक्रिया और मिट्टी तथा पौधों संबंधी जीवाणु की गतिविधियों के कई अन्य पहलुओं का अध्ययन करते हैं। कृषि

सूक्ष्म जीव विज्ञानियों ने चुने हुए प्रभावकारी फास्फेट सॉल्यूबॅलाइजर्स (घोलक) और नाइट्रोजन मिश्रण तैयार करने की विधियों का विकास किया है। ये जैव उर्वरक कहलाते हैं। एक अन्य जीवाणु जो दलहनी फसल के गाँठ में पाया जाता है, वातावरण की मुक्त नाइट्रोजन को यौगीकृत करता है जिसे **'राइजोबियम'** कहते हैं। कृषिसूक्ष्मजीव विज्ञान का औद्योगिक क्षेत्र के लिए आधारभूत महत्व है। कुछ सूक्ष्मजीवों में उन कीटों को नष्ट करने की क्षमता होती है, जो विभिन्न फसलों पर हमला करते हैं। अतः ऐसे सूक्ष्मजीवों के विकास के लिए कल्चर तैयार करने की तकनीकें विकसित की हैं। ये सूक्ष्मजीव पर्यावरण के संरक्षण के अनुकूल हैं और इनके इस्तेमाल से वे समस्याएं उत्पन्न नहीं होती हैं जो रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से होती हैं। इसके अलावा कृषिसूक्ष्मजीव विज्ञानी पौधों की उन बीमारियों के उपचार के उपाय भी करते हैं जो पौधों में सूक्ष्मजीवों से पैदा होती है।

सूक्ष्म जीव और पर्यावरण

सूक्ष्मजीव पर्यावरण को प्राकृतिक रूप से स्वच्छ और स्वस्थ बनाए रखते हैं। अगर सूक्ष्म जीव न होते तो पूरी धरती कचरें का एक बड़ा ढ़ेर होती। सूक्ष्मजीवों की बदौलत घरेलू और औद्योगिक कचरा पूरी तरह गंधहीन और हानि रहित उत्पादों में परिवर्तित हो जाता है। सूक्ष्मजीवविज्ञान की एक शाखा इन पहलुओं का अध्ययन करती है जिसे पर्यावरण सूक्ष्मजीवविज्ञान कहा जाता है।

अनेक उद्योगों से भारी मात्रा में बहिस्त्रांव निकलते हैं जिनमें कार्बनिक तत्व होते हैं और स्वास्थ्य नियमों के अनुसार जल धाराओं में इन बहिस्त्रांव में कार्बनिक छोड़े जाने से पहले बड़ी

मात्रा में हानिकारी पदार्थ होते हैं। पदार्थ को सुरक्षित स्तरों पर ले जाना जरूरी है। बिना उपचार किए गए बहिस्त्रांव प्रदूषण के स्रोत है और पर्यावरण को प्रदूषित करने के लिए जिम्मेदार है। अतः प्रत्येक उद्योग को गंदे जल के उपचार के लिए एक संयत्र लगाना चाहिए। सूक्ष्मजीवविज्ञान ठोस कचरे से निपटने की समस्याओं के उपचार भी सुझाता है। इनमें कम्पोस्ट तैयार करना प्रमुख है। सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों को इस तरह से नियंत्रित किया जाता है कि वे कचरे को उच्च कोटि के उर्वरक में परिवर्ति कर सकें, जिसका इस्तेमाल फसलों व मशरूम की खेती के लिए किया जा सकता है। यह कचरा भोज्य पदार्थों में भी परिवर्तित हो सकता है। कचरे में चूंकि इक्षु-शर्करा (सुक्रोज़), दुग्ध शर्करा (लैक्टोज) होता है। अतः इनका इस्तेमाल **एल्कोहल**, लैक्टिक एसिड और विटामिन -जैसे पदार्थों उत्पादन के लिए किया जा सकता है। इसके लिए सूक्ष्म जीवाणु किण्वन (माइक्रोबियल फरमेन्टेशन) प्रक्रिया का सहारा लिया जाता है।

सूक्ष्मजीवविज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद के अंतर्गत निम्नलिखित संस्थान कार्य कर रहे हैं :

- केंद्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर
- केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
- राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
- भारतीय रासायनिक जैवविज्ञान संस्थान, कोलकाता
- जैवाण्विक तकनीक संस्थान, चंडीगढ़
- केंद्रीय औषधीय एवं सुगंधित पौध संस्थान, लखनऊ
- वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद काम्पलेक्स, पालमपुर

- वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद जीवरसायन केंद्र, दिल्ली
- कोशिकीय तथा आण्विक विज्ञान केंद्र, हैदराबाद
- औद्योगिक विष विज्ञान अनुसंधान केंद्र, लखनऊ
- क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, जम्मू-तवी

सूक्ष्मजीवविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक है। पुनः संगठित करने संबंधी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी और आनुवंशिकी अभियांत्रिकी की खोज के बाद सूक्ष्मजीवविज्ञान का भविष्य उज्ज्वल हो गया है भविष्य में इसे और भी बढ़ावा मिलेगा। सरकार की उदारीकरण की नीतियों से ऐसे उद्योगों में अधिक पूँजी निवेश होगा जिनसे निश्चित ही पर्याप्त मात्रा में रोजगार उपलब्ध कराया जा सकें। सूक्ष्म जीव विज्ञानियों के लिए रोज़गार के बेहतर अवसर उपलब्ध होंगे।

अध्याय - 4

प्राचीन और नवीन जैव-प्रौद्योगिकी

जैवप्रौद्योगिकी का सम्बन्ध प्राचीन काल से चला आ रहा है, जब हमारे किसी पूर्वज के परिवार में गृहणी ने दही जमाया होगा या सिरका बनाया होगा अथवा जब खमीर उठाकर सुरा या आसव का निर्माण किया होगा, तब उन्हे यह पता नहीं था कि वह अनजाने में विज्ञान की एक नयी विधा को जन्म दे रही है जो अब जैवप्रौद्योगिकी के रूप में एक नयी सृष्टि की ओर अग्रसर हो रही है। इस प्रौद्योगिकी के कई साधारण उदाहरण हमारे सामने हैं जैसे — दही जमने में 'लैक्टोबैसिलस' जीवाणु की भूमिका, खमीर उठाने में यीस्ट नामक सूक्ष्म जीव का उपयोग आदि। जैवप्रौद्योगिकी का उपयोग मनुष्य औषधियों और खाद्य पदार्थों के उत्पादन में प्रचुरता से करता आया है। शरीरक्रिया को चर्म, रुधिर, मांस, अस्थि, मज्जा, मेद और वीर्य इन सात धातुओं और दोषों को वात, पित और कफ के आधार पर समझने की प्रणाली भारतीय आर्युर्वेद की प्राचीन खोज थी। सूक्ष्मजीवों के अन्य कई उपयोग हमारे

दैनिक जीवन के अभिन्न अंग बन गये हैं और ये इतने सामान्य और साधारण हैं कि हम इन्हें जैवप्रौद्योगिकी मानने में भी हिचकेंगे। सभी उत्पादन सेवा प्रक्रियाएँ जो सूक्ष्मजीवों आदि की प्राकृतिक क्षमताओं पर आधारित हैं, अक्सर प्राचीन जैवप्रौद्योगिकी के रूप में जानी जाती है। अतः प्राचीन जैवप्रौद्योगिकी में लगातार निम्नलिखित दो प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं :

(i) नयी क्षमताओं वाले सूक्ष्मजीवों की तलाश।

(ii) सूक्ष्मजीवों की क्षमता का वरण, उत्परिवर्तजनन आदि के द्वारा लगातार सुधार।

कई रसायनों का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन सूक्ष्मजीवों की प्राकृतिक क्षमताओं पर आधारित हैं। *जैसे विटामिन, अमीनोअम्ल, एथेनाल, कार्बनिक अम्ल आदि।* जर्मनी के एक वैज्ञानिक ने सूक्ष्मजीवों के उपयोग से ग्लिसराल के उत्पादन का विकास किया। इसी तरह ब्रिटेन में भी 'क्लास्ट्रीडियम एसिटोयुटाइलियम' की मदद से ऐसिटोन— ब्युटेनाल उत्पादन की विधि विकसित की। प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) के दौरान इटली में **सिट्रिक अम्ल का उत्पादन** सिट्रस के फलों से होता था। अतः उसका व्यापारिक उत्पादन घट गया जिससे इसकी कीमत काफी बढ़ गयी। इसके फलस्वरूप सिट्रिक अम्ल का उत्पादन, **एस्पर्जिलस नाइजर** नामक फफूँद से किया जाने लगा। पेनिसिलीन का उत्पादन **पेनिसीलियम नोटेटम** नामक फफूँद से फ्लेमिंन ने 1930 में ही कर लिया था पर इसका व्यापारिक उत्पादन द्वितीय विश्व युद्ध (1939-43) के दौरान ही शुरू हो पाया। 'पेनिसिलीन' का व्यापारिक उत्पादन जैवप्रौद्योगिकी की सबसे बड़ी सफलता मानी जाती है। प्राचीनकाल से ही कृषि के

क्षेत्र में विभिन्न किस्मों के पौधों के संकरण से बीजों की नवीन किस्म प्राप्त करना जैवप्रौद्योगिकी का परम्परागत महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है।

नवीन जैवप्रौद्योगिकी अधिकतर 'पुनःर्योजन' तकनीकी पर निर्भर है। इसके अन्तर्गत किसी भी जीव के मनचाहे जीन को किसी अन्य जीव में स्थानान्तरित किया जा सकता है। इस विधि के उपयोग से सूक्ष्मजीवों में सर्वथा नई अभूतपूर्व और अत्यंत उपयोगी क्षमताओं का विकास किया गया है। पुनर्योजित 'ई कोलाई जीवाणु' द्वारा उत्पादित इंसुलिन का मधुमेह के इलाज में उपयोग हो रहा है। इसके अलावा हारमोन्स का भी उत्पादन पुनर्योजन तकनीकी से किया जा रहा है। जीवों से प्राप्त एन्जाइमों का व्यावहारिक उत्पादनों में उपयोग नवीन जैवप्रौद्योगिकी के उदाहरण हैं। इसी प्रकार जैवप्रौद्योगिकी में एक ओर सूक्ष्मजीवों के उपयोग से सस्ते और सुलभ, अधिक उपयोगी और ज्यादा मूल्यवान पदार्थों का उत्पादन किया जाता है उदाहरणार्थ शर्करा आदि से एल्कोहल, एमीनो अम्ल आदि। दूसरी ओर अत्यन्त कठिन व जटिल प्रतिक्रियाओं, जैसे-पुनर्योजन डी. एन. ए. प्रौद्योगिकी, एन्जाइम प्रौद्योगिकी, एन्जाइम अभियांत्रिकी से उपयोग उत्पादों का निर्माण किया जाता है।

मानव स्वास्थ्य रक्षा के लिए जैवप्रौद्योगिकी की मदद से किए गए नवीन अनुसंधान बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनके उदाहरणार्थ हैं पुनर्योजन टीके, दुर्लभ और जीवन रक्षक औषधियाँ (इन्सुलिन, मानव इटरफेरॉन, जीन उपचार की तकनीक अभकारक) एकक्लोनीय प्रतिरक्षी डी. एन. ए. अन्वेषी दोनों ही रोग निदान, में उपयोगी है।

कोशिकाओं से प्राप्त किए गये एन्जाइमों के विविध उपयोग किये जाते हैं, जैसे खाद्य संसाधन पेय सुधार, डिटर्जेंट आदि के लिए तथा जैव संवेदक बनाने आदि। आण्विक जैविकी की तकनीकों के उपयोग से एन्जाइमों के एमीनो अम्ल क्रमों में फेर बदल करके उनके गुणों में सुधार करने के प्रयास भी किए जा रहे हैं, इसे एन्जाइम अभियांत्रिकी कहा जाता है।

सूक्ष्मजीवों के उपयोग से अनेक उपयोगी यौगिकों का उत्पादन किया जा रहा है। कई सूक्ष्मजीवों, जैसे विषाणु, फफूंदी, अमीबा, जीवाणु आदि का उपयोग नाशी कीटों, पादप रोगों के नियंत्रण के लिए किया जा रहा है (जैव नियन्त्रण)। कुछ जीवाणु तथा नील हरित शैवाल का उपयोग जैव उर्वरक के रूप में किया जा रहा है। इसके साथ ही, कुछ शैवालों तथा जीवाणुओं के जीवभार का मानव या पशु भोजन के रूप में उपयोग होता है। जीवाणुओं के चयनित एवम् सुधरे विभेदों का उपयोग सीवेज उपचार, औद्योगिक इकाइयों के वहिस्रावों में उपस्थिति, अविषालु पदार्थो के निराविषन, खनिज तेलों के विघटन आदि में किया जा रहा है।

पात्रे संवर्धित जन्तु और पादप कोशिकाओं से कई उपयोगी उत्पाद प्राप्त किये जाते हैं। आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा जंतुओं तथा पौधों में उपयोगी जीनों का स्थानान्तरण किया जा रहा है, इससे फसलों के लक्षणों में उपयोगी सुधार, जैसे कीटरोधिता आदि हुए हैं अथवा हो रहे हैं, ऐसे पौधों तथा जन्तुओं से बहुमूल्य यौगिक प्राप्त किये जा सकते हैं। पात्रे तकनीक द्वारा पौधों का त्वरित क्लोनीन गुणन, आनुवंशिक विविधता की उत्पत्ति समयुग्मज लाइनों का शीघ्र उत्पादन आदि का महत्वपूर्ण काम हो रहा है।

जैवप्रौद्योगिकी की उपयोगिता लगभग असीम है और इसकी सीमा मानव ज्ञान और कल्पना सीमाएं हैं। वैसे जैवप्रौद्योगिकी में अनुसंधान विकास की गति तीव्र हो गयी है तथा इस दिशा में बहुत ही सार्थक परिणाम सामने आ रहे हैं, उत्पादों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, यह सब नवीन जैवप्रौद्योगिकी की देन है।

अध्याय - 5

संगठन

भारत में जैवप्रौद्योगिकी को सुचारु रूप से विकास करने के लिए केंद्र सरकार ने 1982 में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत एक राष्ट्रीय जैवप्रौद्योगिकी निगम का गठन किया जिसका उद्देश्य देश में जैवप्रौद्योगिकी सम्बन्धी गतिविधियों का समन्वयन करना और उन्हें बढ़ावा देना था। सन् 1986 में राष्ट्रीय जैवप्रौद्योगिकी निगम को विज्ञान एवं तकनीकी मंत्रालय के अन्तर्गत एक अलग जैवप्रौद्योगिकी विभाग में रूपांतरित कर दिया गया। जैवप्रौद्योगिकी में शोध के लिए तीन संस्थानों में शोध केंद्र की स्थापना की गई जो निम्नलिखित है :

1. भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
2. राष्ट्रीय दुग्ध शोध संस्थान, करनाल (हरियाणा)
3. भारतीय पशु शोध संस्थान, इज्जत नगर, बरेली (उत्तर प्रदेश)

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में स्थापित केंद्र को अब राष्ट्रीय पादप जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान केंद्र कहा जाता है।

जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने तीन स्वायत्त संस्थान स्थापित किये जो निम्न है :

1. राष्ट्रीय रोग प्रतिरक्षण संस्थान, नई दिल्ली
2. राष्ट्रीय पशु ऊतक और कोशिका संवर्धन और रोग लक्षण विज्ञान, हैदराबाद
3. सेंटर फार डी. एन. ए. फिंगर प्रिंटिंग एंड डायग्नोस्टिक्स, हैदराबाद

जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने पादप आण्विक जैविकीय शोध के लिए देश भर में सात केंद्रों की स्थापना की — जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (नई दिल्ली), तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय (कोयम्बटूर), मदुरै कामराज विश्वविद्यालय (मदुरै), दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली), उस्मानिया विश्वविद्यालय (हैदराबाद), बोस संस्थान (कोलकाता) तथा राष्ट्रीय वनस्पति संस्थान (लखनऊ)। इन केंद्रों को जैवप्रौद्योगिकी में उच्च स्तरीय शोध के लिए प्रचुर मात्रा में सहायता दी गयी है। यहाँ विकसित तकनीकों के व्यापारिक उपयोग के लिए 'बायोटेक कंसोर्टियम इंडिया लिमिटेड' नामक कम्पनी भी जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने स्थापित की है।

जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने जननद्रव्य संग्रह और संरक्षण की भी कई योजनाएं शुरू की हैं। राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संपदा ब्यूरो, नई दिल्ली में क्लोनीय फसलों के जनन द्रव्य संरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय पादप ऊतक **सवंर्धन आधान** सुविधा की स्थापना की गई। इसके अलावा औषधि और सुगंधित पौधों के जनन द्रव्य संरक्षण के लिए निम्न संस्थाओं में तीन जीन बैंकों की स्थापना है

(i) केंद्रीय औषधि और सुगंधित पादप संस्थान, लखनऊ

(ii) उष्ण कटिबंधीय वानस्पतिक उद्यान अनुसंधान और संस्थान, त्रिवेन्द्रम

(iii) राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संपदा ब्यूरो, नई दिल्ली।

वन वृक्षों एवं फल वृक्षों के सूक्ष्म प्रवर्धन के लिए जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने तीन संस्थाओं में प्रारम्भिक संयत्रों की स्थापना की है वे हैं —

(i) टाटा ऊर्जा अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

(ii) राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पूणे

(iii) जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर।

राष्ट्रीय पशु ऊतक और कोशिका संवर्धन संस्थान की स्थापना सन् 1988 में की गई थी। यह संस्थान विभिन्न कोशिकाओं का भण्डारण और आपूर्ति करता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक अन्तर्राष्ट्रीय आनुवंशिक अभियांत्रिकी और जैवप्रौद्योगिकी केंद्र की स्थापना की है। इसका एक संस्थान ट्रिएस्टे, इटली तथा दूसरा नई दिल्ली में है नई दिल्ली केंद्र की स्थापना 1987 में हुई थी।

जैवप्रौद्योगिकी में निजी क्षेत्रों की कम्पनियों की रुचि बढ़ती जा रही है। कई कम्पनियाँ केवल जैवप्रौद्योगिकी पर आधारित है जबकि अन्य कई कम्पनियों ने जैवप्रौद्योगिकी इकाइयों की स्थापना की है। कुछ कम्पनियों द्वारा रोग निदान किट विकसित किये जा रहे है।

भारत सरकार की ओर से जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान और विकास के लिए अनेक प्रशिक्षण कार्यक्रम, छात्रवृत्तियाँ, शोधवृत्तियाँ और अनुदान दिये जा रहे हैं। इण्टरमीडिएट परीक्षा में उत्तीर्ण के

साथ, जीव विज्ञान समूह, भौतिकी, रसायन विज्ञान, गृह विज्ञान, कृषि विज्ञान उत्तीर्ण अभ्यार्थी इस क्षेत्र में उच्च अध्ययन हेतु प्रवेश ले सकते है। विज्ञान विषय की पृष्ठभूमि वाली लड़कियाँ खाद्य प्रसंस्करण से जुड़े पाठ्यक्रम में दाखिला ले सकती हैं। विभिन्न पाठ्यक्रमों जिनमें चिकित्सा विकास, दवाओं के विनिर्माण, प्लास्टिक, एल्कोहल, खाद्य, उर्वरक आदि के बारे में अध्ययन और अनुसंधान की सुविधाएं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, (वाराणसी), गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, (पन्तनगर), जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (नई दिल्ली), पुणे विश्वविद्यालय (पुणें), पंजाबी विश्वविद्यालय (पटियाला), पंजाब विश्वविद्यालय (चंडीगढ़), मदुरै कामराज विश्वविद्यालय (मदुरै), एम.एस. विश्वविद्यालय (बडोदरा), हिमांचल विश्वविद्यालय (शिमला), देवी अहिल्या विश्वविद्यालय (इन्दौर), इलाहाबाद विश्वविद्यालय (इलाहाबाद), वनस्थली (राजस्थान), गुरूनानक देव विश्वविद्यालय (अमृतसर), कालीकट विश्वविद्यालय (काझीकांड), हैदराबाद विश्वविद्यालय (हैदराबाद) और गोवा विश्वविद्यालय, (गोवा) में उपलब्ध हैं।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (नई दिल्ली) प्रति वर्ष एक संयुक्त प्रवेश परीक्षा (बायोटेक्नालॉजी टेस्ट इक्जामिनेशन) का आयोजन करता है। इस परीक्षा इन विश्वविद्यालयों में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को एम. टेक स्नातकोत्तर स्तरीय पाठ्यक्रमों में दाखिला दिया जाता है। कृषि, खाद्य प्रौद्योगिकी, जैव रसायन अभियंत्रिकी या जीव विज्ञान के साथ स्नातक परीक्षा में कम से कम 55% अंकों के साथ उत्तीर्ण अभ्यर्थी आवेदन कर सकते है। इसके अलावा

लखनऊ विश्वविद्यालय (लखनऊ), भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (खडगपुर), इलाहाबाद कृषि संस्थान (इलाहाबाद), सूक्ष्मजीव प्रौद्योगिकी संस्थान चंड़ीगढ़, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (नई दिल्ली), भारतीय दासन विश्वविद्यालय (तिरूचनापल्ली), रुडकी विश्वविद्यालय (रुडकी) आदि में भी जैवप्रौद्योगिकी से जुड़े पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं।

अध्याय - 6

अनुसंधान एवं विकास

जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास काफी खर्चीला, दुरूह, समय साध्य, दक्षता एवं कुशलता पर आश्रित है। इसके लिए लगन और मनोयोग की आवश्यकता होती है। अतः विकसित देशों में इस क्षेत्र में प्रगति की संभावनाएं विकासशील देशों की अपेक्षा काफी अधिक हैं। यह अनुसंधान, विकास तथा व्यापार सभी क्षेत्रों पर लागू होता है। विकासशील तथा विकसित देशों द्वारा विकसित और उत्पादित जैवप्रौद्योगिक उत्पादों की सूची देखने पर यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है। इस समय बाजार में उपलब्ध लगभग सभी जैवप्रौद्योगिक उत्पाद विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा उत्पादित हैं। अतः ऐसी प्रत्याशा की जा सकती है कि जैसे जैसे जैवप्रौद्योगिकी उत्पादों का व्यापार बढ़ेगा वैसे-वैसे विकसित देशों की विश्व बाजार में भागीदार बढ़ती जायेगी। इसके फलस्वरूप जैवप्रौद्योगिकी में पिछड़े विकासशील देश आर्थिक और तकनीकी क्षेत्रों में और भी पिछड़ते जायेंगे जबकि विकसित देश और भी समृद्ध तथा ताकतवर

होते जायेंगे। भारत एक विकासशील देश है और भारत के पास जैवप्रौद्योगिकी के लिए संसाधन व्यापक रूप से उपलब्ध है साथ ही यहाँ जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में व्यापक रूप से अनुसंधान और विकास कार्य चल रहा है। कुछ अनुसंधान के सार्थक परिणाम भी आ गये हैं तथा कुछ आने बाकी हैं। भारत में जैवप्रौद्योगिकी क्षेत्र में जो भी अनुसंधान एवं विकास कार्य चल रहा है उस पर इस अध्याय में महत्वपूर्ण बिन्दु पर प्रकाश डाला जा रहा है।

पिछले 14 वर्षों में जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने अनुसंधान के कार्यक्रम पूरे देश में चलाये हैं। पाँच सौ से अधिक अनुसंधान कार्यक्रमों को वित्तीय तथा तकनीकी सहायता प्रदान की है। जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने जैवप्रौद्योगिकी के राष्ट्रव्यापी और अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों को विकसित करने का दायित्व वहन किया है। विभाग ने बहुमुखी अनुसंधान गतिविधियों को संचालित करने में बहुत प्रशंसनीय कार्य पर शोध एवं विकास के समन्वयन की दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके फलस्वरूप आज जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में देश में प्रशिक्षण और अनुसंधान कार्यों को प्रोत्साहन मिला है। मानव औषधियों, तंत्रिका तंत्र विज्ञान (न्यूरोसाइसेज) रोग लक्षण विज्ञान (डायग्नोस्टिक्स), औषधियों का निर्माण, उसकी प्रभाविता बढ़ाने और प्रोटीन अभियांत्रिकी तथा साथ ही खेती के क्षेत्र में अनेक फसलों, संकर बीज और पौधों के विकास, जैव उर्वरक, ऊतक संवर्धन और पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित कीट नियंत्रण के कार्यक्रमों को भी विशेष महत्व दिया है।

भारत सरकार का जैवप्रौद्योगिकी विभाग नई तकनीकों, नये उपकरणों और नए पदार्थों के उत्पादन और विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है। तकनीकी सलाहकार निगम, वैज्ञानिक

तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी.एस.आई.आर.) आदि के सहयोग से विभाग ने हैजा, क्षय रोग-जैसी भयंकर बीमारियों के निदान और औषधीय पौधों, प्रोटीन अभियांत्रिकी और परोपजीवी बैंकों की दिशा में अनेक उपलब्धियां प्राप्त की हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के सहयोग से फसलों को सुधारने के कार्य में जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान एवं प्रशिक्षण को विकसित किया जा रहा है। भारतीय रासायनिक जीव विज्ञान संस्थान, कोलकाता के द्वारा हैजा और कुष्ठ रोग आदि के निवारण के लिए जैव उपायों के विकास क्रम में टीकों और वैक्सीनों का उत्पादन किया गया है। मुम्बई औषधि विज्ञान प्रतिष्ठान, राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान नागपुर, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली; जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, और नई दिल्ली के राष्ट्रीय प्रतिरक्षा संस्थान नई दिल्ली में औषधि विज्ञान के क्षेत्र में तथा पर्यावरण-संरक्षण के लिए जैवप्रौद्योगिकी की अनेक उपलब्धियां राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त की गई हैं।

कृषि क्षेत्र में फसलों, जैसे—चाय, काफी, मसालों, रबड़, गेहूँ, मक्का, धान, सरसों के लिए अनेक जैव-प्रौद्योगिक विधियां अपनाकर फसलों की उत्पादकता, गुणवत्ता बढ़ाने के कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल और केंद्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार में नये दुधारु पशुओं की नई उन्नत नस्लों को बढ़ानें का कार्य जारी है। राष्ट्रीय सागर विज्ञान संस्थान गोआ, केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ तथा अनेक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के सहयोग से औषधियों एवं जैव द्रव्यों की प्राप्ति के लिए विस्तृत समुद्री संपदा का उपयोग

करने में जैवप्रौद्योगिकी की उभरती तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है।

मछली और अन्य जलीय जन्तुओं का विकास, जैवसंवेदकों (बायोसेंसर्स), कोशिका नियन्त्रण और अत्यन्त विषैले कचरों के उपयोग के लिए विशिष्ट जैवप्रौद्योगिकी विधियाँ आजमायी जा रही हैं। राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पूणे और राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान, नागपुर के द्वारा खनिज तेल की पुनः प्राप्ति और तेल के बिखरने से सागर पर उत्पन्न प्रदूषण को घटाने के लिए जैवप्रौद्योगिक अनुसंधान किये जा रहे हैं। भुवनेश्वर स्थित मीठा जल जीव पालन अनुसंधान ने जैवप्रौद्योगिकी द्वारा मछलियों की अनेक नई किस्में विकसित हो गई हैं। जो अधिक उत्पादन देती हैं। जैवप्रौद्योगिकी मदद से यह संभव हो गया है कि मनचाहे लिंग की मछलियां पैदा की जा सकती हैं। यह कार्य आनुवंशिक अभियांत्रिकी से संबद्ध है। जायाजनन की क्रिया में गुणसूत्रों में परिचालन से केवल मादा जीवों से बच्चे पैदा किये जाते हैं और इससे पैदा हुई मछलियां केवल मादा होती हैं। पुंजनन की क्रिया इसका ठीक उल्टा परिणाम देती है। इस क्रिया में गुणसूत्रों के परिचालन के फलस्वरूप केवल नर बच्चे ही पैदा होते हैं। इसी प्रकार बहुगुणित से बाँझ मछलियाँ पैदा होती है। बहुगुणिता मछलियों की शारीरिक ऊर्जा का वह भाग जो जननांगों के विकास में खर्च होता है और वजन बढ़ाने में काम आता है। रोगमुक्त मछलियां पैदा करने के लिए अच्छी नस्ल की मछलियों को चुनकर उनको निरन्तर प्रक्रिया से उपचरित किया जाता है। इसी तरह से निषेचित अंडे में मौजूद डी. एन. ए. से मछलियों की

अच्छाइयों या उनकी कमियों या आनुवंशिक बीमारियों का पता चल जाता है। जैवप्रौद्योगिकी से कुछ ऐसे प्रयोग सम्भव हो गये हैं जो लिंग परिवर्तन कर सकते हैं। इस बारे में अनुसंधान हो रहा है। शिशु मछलियों को स्टीरॉयड हारमोन खिलाकर एक ही लिंग की मछलियों पैदा की जा सकती हैं। इस प्रकार आनुवंशिक अभियांत्रिकी से पैदा की गई मछलियों को पराजीनी मछलियां कहते हैं। यह जैवप्रौद्योगिकी का ही कमाल है कि भुवनेश्वर स्थित मीठा जल जीव पालन अनुसंधान संस्थान, ने मछली का उत्पादन बढ़ाकर प्रति हेक्टेयर 17 टन तक कर दिया है वैसे उसका लक्ष्य 25 टन मछलियाँ प्रति हेक्टेयर का है।

जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में दिल्ली विश्वविद्यालय की अनेक उपलब्धियों में विशेष उल्लेखनीय है 'बाँस के उत्पादन के लिए ऊतक संवर्धन प्रौद्योगिकी'। इस तकनीक को टाटा ऊर्जा अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली को हस्तांतरित कर दिया गया है। राष्ट्रीय सूक्ष्म जीव प्रकार संग्रह की सुविधा (नेशनल फेसिलिटी फॉर माइक्रोबिअल टाइप कल्चर कलैक्शन) का विकास सूक्ष्मजीव प्रौद्योगिकी संस्थान, चण्डीगढ़ द्वारा किया गया है। नील हरित शैवालों के संग्रह की राष्ट्रीय सुविधा, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में विकसित की गई है। तिरूचिरापल्ली स्थित भारती दासन विश्वविद्यालय में अनेक प्रकार के नील-हरित शैवाल (सायनो बैक्टीरिया) का संग्रह समुद्री तटवर्ती क्षेत्रों में गहन सर्वेक्षण के फलस्वरूप किया गया है। पौधों के ऊतक संवर्धन के लिए संचयनी सुविधा नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लान्ट जेनेटिक रिसोर्सेज, नई दिल्ली, में स्थापित की गयी है। प्रयोगशाला अनुसंधान हेतु देश भर

के एक लाख से अधिक पशुओं को मुहैया कराने के लिए पशु आवास सुविधा नामक सुविधाएं केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान लखनऊ, राष्ट्रीय संस्थान, बंगलौर में कार्यरत है। जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान,दिल्ली और अन्य समकक्ष संस्थान तथा नई दिल्ली के जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी, बोस संस्थान, कोलकाता तथा सूक्ष्म जैवप्रौद्योगिकी संस्थान, चंडीगढ़ में उल्लेखनीय कार्य किया जा रहा है। मुंबई का कैन्सर अनुसंधान संस्थान, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान, इज्जत नगर, बरेली, एवं अनेक कृषि विश्वविद्यालय में भी इस दिशा में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया गया है।

आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी में इलेक्ट्रॉनिक्स देश भर में सूचना प्रदान करने एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए अनेक महत्वपूर्ण सेवायें जिसमें परमाणु ऊर्जा, आन्तरिक संचार, शिक्षा, रक्षा, कृषि, निर्माण, सेवा क्षेत्र, मनोरंजन, रोजगार सृजन और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है। ये सेवायें शीघ्र अनेक केंद्रों पर भारत सरकार द्वारा विकसित जैवप्रौद्योगिकी सूचना प्रणाली के रूप में दी जा रही है।

सूचना प्रौद्योगिकी की चकाचौंध में हम जैवप्रौद्योगिकी की आहट को नहीं सुन पा रहे हैं। इसमें कोई शक नहीं हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी ने न जाने कितने-कितने खानों में बँटी इस दुनिया को संगणक के पर्दे में समेट कर रख दिया है। मगर जैवप्रौद्योगिकी की उपलब्धियाँ भी कम अनोखी नहीं हैं। जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होने वाले नवीन अनुसंधान और विकास अल्प समय में विश्व के

कोने में फैलाने के लिए जैवप्रौद्योगिकी और सूचना प्रौद्योगिकी को साथ लेकर चलने की आवश्यकता है। इसी दिशा में जैवप्रौद्योगिकी विभाग के जैवप्रौद्योगिकी सूचना प्रणाली कार्यक्रम के अंतर्गत जैवप्रौद्योगिकी के विशिष्ट क्षेत्रों में सूचनाएं प्रसारित करने के लिए एक राष्ट्रीय नेटवर्क निर्मित किया गया है। राष्ट्रीय सूचना नेटवर्क के अन्तर्गत 10 प्रमुख जैवप्रौद्योगिकी सूचना केंद्र तथा 23 उपकेंद्र हैं। ये केंद्र जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान एवं विकास कार्यों में रत विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थाओं में स्थापित है। कुछ महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं— भारतीय विज्ञान संस्थान बेंगलूर, मदुरै कामराज विश्वविद्यालय मदुरै, कोशकीय और आण्विक जीव विज्ञान केंद्र हैदराबाद; पुणे विश्वविद्यालय, पुणे और बोस संस्थान, कोलकाता। केंद्रीय विज्ञान, प्रौद्योगिकी और मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने इलाहाबाद में 'अन्तर्राष्ट्रीय जैवप्रौद्योगिकी केंद्र' की स्थापना की घोषणा की है। यह केंद्र रूस के सहयोग से स्थापित किया जायेगा। यह केंद्र भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, इलाहाबाद, में स्थापित होगा। उन्होंने कहा कि सूचना प्रौद्योगिकी में भले ही उतार-चढ़ाव दिखने को मिल जायं लेकिन जैवप्रौद्योगिकी अब निरन्तर विकसित होने वाली विधा है तथा भविष्य में जैवप्रौद्योगिकी के माध्यम से मानव विकास सम्भव है।

ऊर्जा उत्पादन के लिए जैवप्रौद्योगिकी के उपयोग के लिए जैवप्रतिमारक विकसित करने में अनेक राष्ट्रीय प्रयोगशालायें और अनुसंधान संस्थायें गत दो दशकों से विशेष सक्रिय हैं। टाटा ऊर्जा अनुसंधान संस्थान ने बायोगैस उत्पादक चूल्हों को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिए तैयार कर अनेक छोटे-बड़े प्रतिरूपों

का विकास किया है। इस क्षेत्र में पहल करने का श्रेय भारत सरकार के गैर परम्परागत वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत विकास विभाग को विशेष रूप से दिया जा सकता है। केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ; राष्ट्रीय मलेरिया संस्थान, नई दिल्ली आदि ने अनेक प्रतिरक्षा परीक्षण किट विकसित की हैं। पूणे का हिन्दुस्तान प्रतिजैविक लिमिटेड, पूणे; ऋषिकेष औषधि निर्माण में जैवप्रौद्योगिक तकनीकों के उपयोग एवं विकास के लिए उत्तरदायी है। बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) स्थित भारत प्रतिरक्षा और जैविक निगम और गुड़गाँव (हरियाणा) का भारतीय टीका निगम लिमिटेड टीका उत्पादन और अनुसंधान के लिए जैवप्रौद्योगिकी के विकास में सक्रिय है। इसके साथ ही एक इन्डो यू. एस. टीका कार्यक्रम भी कार्यांवित किया जा रहा है। इसमें भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ; जवाहर लाल स्नात्कोत्तर चिकित्सा शिक्षा एवं शोध संस्थान, पांडिचेरी, राष्ट्रीय विषाणु संस्थान, पुणे, नेशलन इंस्टीट्यूट ऑफ कॉलरा एण्ड एण्टरिक डिसीजेज कोलकाता; क्रिश्चन मेडिकल कॉलेज, बेल्लोर; भारतीय विज्ञान संस्थान बंगलूर और अमेरिका की अनेक संस्थायें जैसे रोग रोगथाम केंद्र, अटलांटा आदि सहयोग कर रही हैं। 1987 से देश टीकों एवं प्रतिरक्षा निदान के विकास के लिए संचालित किया जा रहा है। केंद्रीय कोशिकी और आण्विक जीव विज्ञान केंद्र, हैदराबाद में जैवप्रौद्योगिकी से सम्बद्ध पक्षों पर अनेक अनुसंधान एवं विकास कार्य हुए हैं।

जैवप्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के अन्तर्गत दो अन्य महत्व के संस्थान सक्रिय है, ये है — राष्ट्रीय प्रतिरक्षा संस्थान, नई

दिल्ली और पशु ऊतक संवर्धन एवं कोशिका संवर्धन की राष्ट्रीय सुविधा संस्थान, पूणे। राष्ट्रीय प्रतिरक्षा संस्थान ने गर्भ निरोधकों और संक्रामक रोगों तथा रोग परीक्षण व भ्रूण प्रतिरोपण में अनेक उपलब्धियां प्राप्त की है। जनसंख्या नियंत्रण के लिए औषध उत्पादन की अनेक विधियां यहां विकसित की गयी है। पूणे की राष्ट्रीय सुविधा संस्थान पशुओं के ऊतकों एवं कोशिकाओं के संग्रह एवं आपूर्ति का कार्य कर रही है। जनवरी 1990 में जी-15 देशों की बैठक जो क्वाललमपुर मुलेसिया में हुई, इसमें लिए निर्णय के अनुसार औषधीय एवं सुगंधित पौधों के जीन बैंकों के बनाने का कार्य भी देश में प्रगति पर है। इससे जी-15 देशों के संगठन के सभी देशों को जीन अभियंत्रिकी और जैवप्रौद्योगिकी में आपसी सहयोग करना तथा भाई चारा बनाने एवं जैव विविधता के संरक्षण में सहायता मिलेगी।

जीन विधियों द्वारा परिवर्तित जीवों, पशुओं आदि के वृहत् उत्पादन के लिए एक नियंत्रण समिति आनुवंशिक अभियंत्रिकी स्वीकृति कमेटी की स्थापना की गई है। यह भारत सरकार के पर्यावरण और वन मंत्रालय के आधीन अपना कार्य करती है। यह कमेटी औषध, पशुधन एवं खाद्य पदार्थों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था यूनिडो द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार उत्पादों को आकेंगी। उनके ऐसे परीक्षण जो इन पदार्थों की जैव-सुरक्षा को सुनिश्चित कर सके, इसके पश्चात् ही वह इन्हें उत्पादन करने की (या पेटेंट कराने की) अनुमति प्रदान करेगी।

चीन, जापान, क्यूबा, मंगोलिया, पोलैण्ड और श्रीलंका-जैसे देशों के साथ भारत ने मिल-जुल कर अनेक अनुसंधान कार्यों हेतु

विशिष्ट क्षेत्रों को सुनिश्चित किया है। इण्डो-स्वीडिश जैवप्रौद्योगिकी सहयोग के अन्तर्गत व्यावहारिक जैव उत्प्रेरण पर और सार्क देशों के साथ जीन अभियांत्रिकी और प्रतिरक्षा निदान पर अनुसंधान और विकास कार्य किया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र की संस्था यूनिडो के सहयोग से आनुवंशिक अभियंत्रिकी और जैव प्रौद्योगिकी केंद्र की स्थापना, दो घटकों में की गई है। एक घटक नई दिल्ली, भारत तथा दूसरा ट्रिएस्टे, इटली में स्थापित हो चुका है। इसका लक्ष्य विकासशील सदस्य देशों को जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान और विकास में मदद करना है।

ग्रामीण क्षेत्रों के लिए विशेष कार्यशालायें, तथा खेती और पशुधन संवर्धन के लिए उपयुक्त क्षेत्रीय कार्यक्रमों आयोजित के लिए देश भर में अनेक जैव केंद्रों और उपकेंद्रों की स्थापना की गयी है।

अध्याय - 7

जीन-अभियांत्रिकी

प्रत्येक जीन के गुणों का निर्णय उसकी प्रत्येक कोशिका में उपस्थित डी.एन.ए. के रेखीय कुंडलिनी में मौजूद 'प्यूरीन' और 'पाइरिमिडीन' क्षारकों के जीन द्वारा होता है। जीन अभियांत्रिकी से तात्पर्य ऐसी प्रौद्योगिकी से है, जिसकी मदद से किसी एक प्रजाति के जीव-जंतुओं के आनुवंशिक वाहक जीनों का प्रत्यारोपण दूसरी प्रजाति के जीव-जंतुओं में किया जाता है तथा वांछित गुणों वाले जीन प्राप्त किए जाते है। जीन अभियांत्रिकी में एक या एकाधिक जीनों से युक्त डी. एन. ए. को एक कोशिका से निकालकर दूसरी कोशिका के डी. एन. ए. से संयुक्त कर दिया जाता है।

जीन अभियांत्रिकी की शुरुवात सन् 1978 में हुई। इसकी पहल एक जीवाणु में की गई। जीवाणु के एक विभेद के डी.एन.ए. को काटकर दूसरे विभेद के डी.एन.ए. में जोड़ा गया। जीन अभियांत्रिकी के प्रयोग से खाद्यान्न, स्वास्थ्य और पशु पालन में क्रांतिकारी परिवर्तन आए है।

जीवाणु से हुई यह शुरूआत जीन के विनिमय के लिए आज भी जीवाणु पर निर्भर है। पौधों में नए जीन डालने के लिए

एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमीफेशिएन्स नामक जीवाणु को जीन वाहक बनाया जाता है। पर यह कार्य जंतुओं में मुश्किल है। इसके लिए विकसित हो रहे भ्रूण की सर्जरी करनी पड़ती है। इसी वजह से वैज्ञानिकों ने जीन के विनिमय के ज्यादातर प्रयोग पेड़-पौधों पर ही किए हैं।

प्रत्येक जीन अनुलिपिकरण की अनवरत प्रक्रिया द्वारा अपना प्रतिरूपी जीन तैयार करता रहता है। जीन जब संतान में पहुंचते हैं तो वही गुण उत्पन्न करते है जो माता-पिता में थे। नाभिक के बाहर कोशिकाद्रव्य में उपस्थित राइबोन्यूक्लिक अम्ल (आर.एन.ए.) को डी.एन.ए. ही बनाता है। आर.एन.ए. की संरचना डी.एन.ए. जैसी है। इसमें अन्तर यह होता है कि : (1) शर्करा डीआक्सीराइबोस न होकर राइबोस होती है। (2) क्षार थाइमीन की जगह यूरेसिल होती है तथा (3) आर.एन.ए. की संरचना द्विकुण्डलीय के बजाय एक धागे के रूप में होती है। आर.एन.ए. का काम होता है डी.एन.ए. से सूचना लाकर कोशिकाद्रव्य से विशिष्ट प्रोटीन का निर्माण करना। इसलिए इसे संदेश वाहक आर.एन.ए..कहते हैं।

जीवन क्रिया के ठीक संचालन के लिए डी.एन.ए., आर.एन.ए. और प्रोटीन संश्लेषण में एक विशेष सामंजस्य स्थापित करता है। इस सामंजस्य में विचलन हो जाने से जीव में नए अभिलक्षण हो जाते हैं। इस प्रक्रिया को उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) कहते है। नया और बदला हुआ जीन पुराने जीन की तरह स्थायी बन जाता है। फिर वह नये सिरे से उत्पादन करता चला जाता है। कभी-कभी गुणसूत्रों के आपस जुड़ जाने से भी उत्परिवर्तन हो जाता है। दुर्बलता, बन्ध्यता, मृत्यु वाले दोषी जीनों के कारण जीन लुप्त हो

जाते है। इसी जीन परिवर्तन के कारण हजारों जीव-जंतु पृथ्वी पर आए और लुप्त हो गए। अधिक उपज देने वाली टिकाऊ फसलें और जीव-जंतुओं की नई नस्लों का विकास भी इस उत्परिवर्तन की प्रक्रिया के फलस्वरूप संभव हो पाया है।

जीन-अभियांत्रिकी के अन्तर्गत बीमार जीन की मरम्मत नये जीन संकरणों का निर्माण और जीन की संश्लेषण क्षमता के औद्योगिक उपयोग की विधियाँ विकसित की जाती है। जीनों का संलयन, प्रतिरोपण और हस्तांतरण आदि का अध्ययन इसी के आधीन किया जाता है।

जीन अभियांत्रिकी की मदद से 1970 में प्रतिबंधित एंजाइमों की सहायता से हैमिल्टन स्मिथ और डेनिअल नार्थस ने डी.एन.ए. के एक भाग को काटकर अलग करने की तकनीक खोज निकली। 1989 में फसलों के लिए जीन तकनीक का उपयोग करके व्यावसायिक सफलता वाली संकर फसलें (हाइब्रिड फसलें) विकसित करने में सफलता मिली।

पुनर्योजी डी.एन.ए. तकनीक

पुनर्योजी डी.एन.ए. तकनीक का विकास 1972 में अमेरिका के पाल बर्ग और अन्य वैज्ञानिकों ने किया। इसमें एक जीव से डी.एन.ए. का एक अंश लेकर उसे दूसरे जीव के डी.एन.ए. के साथ संकरित करके और इस प्रकार दो भिन्न डी.एन.ए. अणुओं को जोड़कर नवीन डी.एन.ए. तैयार करना सम्भव हो सका।

यह जीन अभियांत्रिकी की शक्तिशाली तकनीक है। इसमें पुनर्योजी डी.एन.ए. तकनीक द्वारा कुछ विशेष एंजाइमों द्वारा किसी एक जीव के जीन का दूसरे जीव के जीन के साथ संकरण

सम्भव हो गया है। इस प्रकार प्राप्त संकरित जीन में दोनों जीवों के गुण उपस्थित होते हैं।

डी.एन. ए. अणुओं को जोड़ने की विधियों में प्रथम है उसकी लडियों के अंतिम छोरों पर नई डी.एन.ए. लडियां जोड़ने की विधि। डी.एन.ए. अणु की लडियों में सदैव एडीनीन तथा थायमीन के मध्य और गुआनीन तथा साइटोसीन के हाइड्रोजन आबंध बनते है। ए और टी तथा जी और सी संयुग्मी क्षार कहलाते है। यदि हम एक डी.एन.ए. के सिरे पर कुछ क्षार और दूसरे डी.एन.ए. के सिरे पर प्रथम संयुग्मी क्षार संयुक्त कर दें तथा उन्हें मिलाएं तो नई लड़ियाँ आपस में हाइड्रोजन आबंध बनाकर दो भिन्न डी.एन.ए. अणुओं को संयुक्त कर देगी। सिरों पर क्षार जोड़ने का कार्य टर्मिनल "ट्रांसफरेज" नामक एंजाइम करता है।

दूसरी विधि में नियंत्रण एंजाइम का उपयोग करके संयुग्मी क्षार हाइड्रोजन आबंध बना कर संकरित जीन का निर्माण करता है। इस विधि से उन जीवों के संकर भी तैयार किए जा सकते है जिनमें बिल्कुल भी समानता नही होती है — उदाहरण के रूप में टमाटर और मछली का संकर, कबूतर और बिल्ली का संकर इत्यादि। पुनर्योजी डी.एन.ए. तकनीक का उपयोग एक अपूर्व संयम और सावधानी की अपेक्षा रखता है। यही नहीं, इच्छानुसार सृष्टि करने की क्षमता होने पर तकनीक का दुरूपयोग करने की अनेक संभावनाएं मौजूद हैं। अतः वैज्ञानिकों ने इस दिशा में कुछ नियम एवं न्यूनतम मर्यादाएं स्थापित करने और उनके अनुपालन की आवश्यकता पर बहुत जोर दिया है।

डी.एन.ए. पुनर्योजन की एक और बहुत महत्वपूर्ण विधि है- 'क्लोनन' क्लोनन का अर्थ है एक 'पुंजन'। यह अलैंगिक प्रजनन

की प्रक्रिया है। संतान उत्पन्न करने के लिए इसमें नर और मादा के संयोग की आवश्यकता नहीं होती। इसकी सीमा यह है कि क्लोनन में नर से ली गई कोशिका केवल नर संतान बनाएगी और मादा की कोशिका मादा संतान कोशिकाओं में डी.एन.ए. का पुनरूत्पादन तभी होता है जब यह एक विशेष जीन पुनर्लिपिकरण जीन से संयुक्त है। कोशिका में इन जीनों की संख्या 3000 जीनों पर एक पुनर्लिपिकरण जीन के अनुपात में या और कम होती है। पुनर्लिपिकरण जीन को यदि इसके मूल डी.एन.ए. से अलग करके किसी अन्य डी.एन.ए. के साथ जोड़ दिया जाए तो यह दूसरे डी.एन.ए. का ही पुनलिपिकरण करने लगता है।

कुछ जीवाणुओं में पुनरावृति की क्षमता वाले छोटे वृत्ताकार डी.एन.ए. अणु होते हैं। इन अणुओं को **'प्लैस्मिड'** कहते हैं। प्रत्येक प्लैस्मिड में पुनर्लिपिकरण जीन की उपस्थिति के कारण प्लैस्मिड युक्त जीवाणु कोशिकाएं उपयुक्त संवर्धन माध्यम में तेजी से बढ़ती हैं और कुछ ही समय में इस प्रकार की अरबों कोशिकाएं बनाकर तैयार कर देती हैं।

जैव-संश्लेषण के विधान के अनुसार शरीर में प्रत्येक पदार्थ के संश्लेषण के लिए कोई निश्चित जीन जिम्मेदार है। यदि इस विशिष्ट जीन को प्लैस्मिड के साथ उपर्युक्त संयुग्मी विधि द्वारा संकरित कर प्राप्त डी.एन.ए. को पुनः जीवाणु कोशिका में उपर्युक्त संवर्धन माध्यम में पनपने दिया जाए तो इस जीवाणु में भी वह जीन वही पदार्थ संश्लेषित करता है जो कि वह अपनी मूल मानव कोशिका में करता था। क्लोनन की सफलता ने जैवप्रौद्योगिकी के विकास को एक अभूतपूर्व गति और सामर्थ्य प्रदान की है। रासायनिक संश्लेषण के बजाए जैवसंश्लेषण से बनाए गए पदार्थ तुलनात्मक

दृष्टि से बहुत सस्ते पड़ते हैं। इसका कारण है कि संश्लेषण इकाई के रूप में जीवाणुओं की क्षमता बेमिसाल है। यांत्रिक एसेम्बली लाइन के साथ इसकी तुलना नहीं की जा सकती है। एसेम्बली लाइन कितनी भी श्रेष्ठ हो जीवाणु के सामने प्रतियोगिता में यह कहीं नहीं ठहरती। अकेला जीवाणु पुनलिपिकरण की प्रक्रिया से 24 घंटे में करोड़ो जीवाणु उत्पन्न कर सकता है। अनुकूल परिस्थितियों में इसकी अट्टश्रृंखला पदार्थों के उत्पादन के कारखाने को धड़ाधड़ संचालित करती है।

भारतीय मूल के नोबल पुरस्कार विजेता अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. हरगोविन्द खुराना ने न्यूक्लिओटाइड की श्रेणी के परखनली संश्लेषण की तकनीक विकसित की थी। संश्लेषित न्यूक्लिओटाइडो को परिष्कृत करने वाले एंजाइमों व समाक्षरों के मिश्रण की सहायता से संवर्धित किया जा सकता है। लैक आपरेशन के जीनों को बिलगित व परिष्कृत करने के पश्चात् जीन के अंग को एक जैव पदार्थ अथवा परखनली से दूसरे जैव पदार्थ अथवा परखनली में स्थानान्तरित किया जाता है। रूपान्तरण, पारक्रमण, प्लस्मिड इस तकनीक की मुख्य प्रविधियां हैं।

भारत में एड्स, मलैरिया, हृदय रोग, हीमोफीलिया आदि के टीके के निर्माण में जीन अभियांत्रिकी प्रौद्योगिकी अनुसंधानरत है। जीन अभियांत्रिकी तकनीक से विकसित टिश्यू प्लाज्माइनोजेन एक्टीवेटर का प्रयोग हृदय की धमनियों में रक्त के थक्के को विघटित करने में सफलतापूर्वक किया गया है।

1973 में पुनर्योजी डी.एन.ए. को एक जीवाणु से दूसरे जीवाणु में जीन संक्रमण के लिए उपयोग में लाया गया। इसी पुनर्योजी

डी.एन.ए. तकनीक के उपयोग द्वारा इंसुलिन का, जैव तकनीकीय संश्लेषण कर उसे 'ह्यूलिन' के नाम से बाजार में उपलब्ध करना सम्भव हो सका।

जीन गन

यह एक नवविकसित आधुनिक जैव तकनीक है, जिसकी सहायता से बाह्य जीन को मस्तिष्क ऊतक में प्रत्यारोपित किया जा सकता है। यह तकनीक पारकिन्सन के रोगियो के लिए अत्यंत लाभकारी है। इस प्रकार प्रत्यारोपित जीन कोशिका में डोपामाइन का निर्माण करता है जो मस्तिष्क कोशिका में अन्तरकोशिकीय संचरण में सहायक होता है। पारकिन्सन रोग मस्तिष्क से संबद्ध ऐसा रोग है, जिसमें मस्तिष्क ऊतकों में अन्तर कोशिकीय संचार के अभाव में मनुष्य का विकास नहीं हो पाता है।

प्राणियों में जीन अभियांत्रिकी की कला सबसे पहले चूहे पर आजमाई गई, उनमें मानव, मुर्गियों, विषाणु आदि के जीन प्रवेश कराई गई,पहली सफलता सन् 1982 में वाशिंगटन और पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों को मिली। चूहे के मादा भ्रूण में एक जीन डालकर उसे लंदन के राष्ट्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने नर चूहे में बदल दिया। पर यह नर नपुंसक है। दो वर्ष पूर्व एक अन्य प्रयोग में चूहे के शरीर में कैंसर पैदा करने वाला जीन डाल कर एक किस्म का नया चूहा ही तैयार कर दिया गया। इसे वैज्ञानिक 'आनकोमाउस' यानि कैंसर मूषक कहते है। इसका पेटेन्ट भी करा लिया गया है। कैंसर पर खोज कर रहे वैज्ञानिकों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा विशिष्टि वांछित प्रजातियाँ प्राप्त करना सम्भव हो गया है। हाल ही में आण्विक जीवविज्ञान और आनुवंशिक परिवर्तन से किसी भी जीवित अवयव से लेकर पौधे तक में वांछित जीनों की पहचान करना और उनको अलग करना संभव हो गया है, पौधों की आनुवंशिक संरचना में बिना छेड़-छाड़ किए उसमें वांछित किस्म का जीन रोपित करना जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सबसे बड़ी उपलब्धि है। सेब की फसल में **एटवीनिया एमीलोबोरा** स्कैव और झुलसा प्रतिरोधी तथा पतीते में गोल धब्बे रोधी जीन प्रतिरोपित किये गये हैं। टमाटर में कई पराजीनी किस्मों का विकास किया गया है।

एक जीवाणु कुदरती तौर पर प्लास्टिक पॉलीमर तैयार करता है एक खास जीन के कारण। अगर इसी जीन को किसी पौधे में डाल दिया जाए तो वह भी प्लास्टिक बनाने लगेगा। पौधों से बनी यह प्लास्टिक कारखानों में तैयार प्लास्टिक की तरह होगीं और पर्यावरण के लिए समस्या नहीं बनेगी। यह कल्पना **'क्रिस सोमरविले'** और उनके साथियों ने तैयार की। जीन अभियांत्रिकी से विकसित इस पौधे की पत्तियों, बीजों और जड़ों में भी प्लास्टिक आ जाता है।

प्राणियों के जीन भी पेड़-पौधों में रोपे जा सकते हैं। अमेरिका में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने जुगनू में चमक पैदा करने वाला जीन तम्बाकू के पौधों में डाल दिया। फिर जब तम्बाकू के पौधों पर उस जीन से बनने वाला एन्जाइम 'छिड़का' गया तब वे 'दप-दप' कर दीप्त पैदा करने लगे। इस जीन को फूल वाले पौधों में भी डालने की कोशिश की जा रही है।

जीन अभियांत्रिकी की मदद से वैज्ञानिक फूलों में ऐसे रंग भरने की कोशिश कर रहे हैं जो कुदरत ने नहीं दिए हैं। इसमें फूलों के व्यापार में क्रांतिकारी बदलाव आने की सम्भावना है। फूल खिलाने का काम कुल मिलाकर पाँच जीन करते है। इन जीनों को कृत्रिम रूप से सक्रिय करने से बिना मौसम के भी फूल खिलाएं जा सकते हैं, इसी तरह इनमें से कुछ जीनों को सक्रिय व कुछ को निष्क्रिय करके फूलों की पंखुड़ियों की संख्या, रंग व रूप में भी मनचाहा बदलाव लाया जा सकता है। चार-पाँच साल के भीतर ही ऐसे विलक्षण फूल आपके गुलदस्ते में होंगे।

अब जीन में हेर-फेर करके जहरीली खेसारी दाल को खाने योग्य बनाया गया है। तम्बाकू की ऐसी किस्म निकाली गयी है जिसमें नाममात्र का निकोटीन होता है। ऐसे आलू तैयार किये गये हैं जिनमें स्टार्च की मात्रा ज्यादा होती है। तेल और प्रोटीन वाले पौधे में इनकी मात्रा बढ़ाने का प्रयास जारी है। कुछ पौधों से ऐसे रसायन प्राप्त करने की कोशिश की जा रही है जो हमारे लिए बेहद उपयोगी हैं। उदाहरणार्थ सिरम एल्ब्यूमिन, अनेक उपयोगों वाले एंजाइम वगैरह।

सुपर बग

यह आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा विकसित एक ऐसा जीवाणु है जो तेल को बड़े चाव से खाता है। यह जीवाणु स्यूडोमोनास प्रजाति का है। इसका विकास नागपुर के पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने किया है। इन जीवाणुओं के इस्तेमाल से अब जल सागर पर टैंकरों आदि से रिस जाने वाले तेल पेट्रोलियन को रासायनिक विधि द्वारा समाप्त करने की

आवश्यकता नहीं है। आनुवंशिकी अभियांत्रिकी की सहायता से इन जीवाणुओं में ऐसे जीन डाले जाते है जिससे ये समुद्र के खारे जल में भी जीवित रह सकते हैं तथा वायु से नाइट्रोजन ग्रहण कर सकते हैं। इस कार्य हेतु तीन जीवाणुओं का चयन किया गया है। बल्कि इन्हें उचित अनुपात में, संतुलन बनाए रखते हुए इस्तेमाल किया जाता हैं इन जीवाणुओं में से एक तेल को पायसीकृत करता है, दूसरा कम कार्बन परमाणुओं वाले तेल यौगिकों को विघटित करता है। जबकि तीसरा अधिक कार्बन परमाणुओं वाले तेल यौगिकों को विघटित करता है। इन जीवाणुओं का प्रयोग सफलतापूर्वक मुंबई में तेल रिसाव में दौरान किया गया। इन जीवाणुओं ने समुद्र में रिसे तेल का 80 प्रतिशत भाग 48 घंटे के अन्दर ही समाप्त कर दिया। इस तरह सुपर बग पर्यावरण को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अध्याय - 8

डी.एन.ए. अंगुलिछाप तकनीक

जीन या गुणसूत्र मानव जीवन की मूलभूत इकाई हैं। आनुवंशिकी में 2 अप्रैल, 1953 एक महान उपलब्धि का दिन रहा है, जब कैंब्रिज विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में डॉ. जेम्स सी. बाट्सन और डॉ. फ्रांसिस एच. क्रिक ने जीवन की आधारित इकाई, डी.एन.ए., को रेखांकित किया था। डी.एन.ए. की संरचना द्विकुण्डलीदार होती है। किसी भी जीव के विकास और व्यवहार को नियंत्रित करने का कार्य डी.एन.ए. अपनी विशिष्ट संरचना द्वारा करता है। डी.एन.ए. की द्विकुण्डलीदार संरचना में दो रज्जु आपस में चक्करदार सीढ़ियों की तरह लिपटे होते हैं। डी.एन.ए. में स्थित नाइट्रोजनी बेसों के चार अणु प्रत्येक डी.एन.ए. रज्जु के प्रमुख धारक होते हैं। ये चारों अणु-एडिनीन (ए), थायमीन (टी), साइटोसीन (सी) और गुआनिन (जी) आपस में शर्करा व फास्फेट द्वारा जुड़े रहते हैं। एक रज्जु का एडिनीन (ए) दूसरे रज्जु के थायमीन (टी) से तथा इसी प्रकार साइटोसीन (सी) दूसरे रज्जु के गुआनिन (जी) से जुड़ा होता है। बेसों का यह गठबंधन ही

सूचनाओं को संग्रहीत करने और उनके प्रतिलिपिकरण में डी.एन.ए. की मुख्य कुंजी है।

लीस्टर संस्थान के डॉ. एलेक जेफ्रीज ने अंगुलिछाप (फिंगर प्रिन्ट) तकनीक का विकास सन् 1985 में किया था। इसके लगभग दो वर्ष पश्चात् ब्रिटेन व संयुक्त राज्य अमेरिका इसे कानूनी स्तर पर स्वीकृत दे दी। अपने अध्ययन के दौरान डॉ. जेफ्रीज ने पाया कि हर व्यक्ति का डी.एन.ए. चित्र हमेशा एक-सा होता है चाहे वह शरीर की किसी भी कोशिका से लिया गया हो। डी.एन.ए. अंगुलिछाप शब्द दो पदों डी.एन.ए. तथा 'अंगुलिछाप' का सुमेल हैं। अंगुलिछाप अपराधियों को पकड़ने या उनकी सही पहचान करने की एक प्रचलित विधि है। इसमें घटना स्थल से प्राप्त वस्तुओं पर अंगुलियों के निशान का अपराधियों के मौजूद निशानों को लेकर अध्ययन किया जाता है और अपराधियों के अंगुलिछाप से उसका मिलान करके अपराधी की पहचान की जाती है। इस प्रकार अब जटिल दुर्घटनाओं या वादों का निपटारा डी.एन.ए. अंगुलिछाप की सहायता से किया जाने लगा है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति की उंगलियों के निशान निश्चित रूप से अलग-अलग होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के डी.एन.ए. अलग-अलग कूटों (कोड्स) में होते हैं, इसमें जीवित या मृत व्यक्ति के शरीर के किसी अंग से भौतिक रासायनिक विधियों द्वारा प्राप्त डी.एन.ए. की संरचना ज्ञात की जाती है। उसका मिलान सम्बद्ध व्यक्ति के पुरखों की डी.एन.ए. श्रृंखला से जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार जीवित या मृत व्यक्तियों से प्राप्त डी.एन.ए. और अन्य जैव जानकारी के आधार पर व्यक्ति विशेष की पहचान उसके

आनुवंशिक कोड के आधार पर करना सम्भव हो सका है। वैसे सिद्धांत रूप में यह विद्या काफी सहज दिखाई देती है, किन्तु व्यवहार में ऐसा करना काफी जटिल होता है। फिर भी वर्तमान में न केवल अपराध अनुसंधानों अपितु चिकित्सा शोधों और बीमारियों की पहचान करने में इसका प्रयोग व्यापक रूप से होने लगा है।

अपराध अनुसंधान में डी.एन.ए. जांच का पहला प्रयोग अमेरिका में सन् 1987 में जुलाई माह के हत्या के एक जटिल मामले को सुलझाने में किया गया था। इसके बाद कनाडा में सितम्बर, 1988 में हत्या के ही एक जटिल व चर्चित मामले में इसकी सहायता ली गयी।

भारत में डी.एन.ए. अंगुलिछाप तकनीक को लाने का मुख्य श्रेय डॉ. लाल जी सिंह को है जो हैदराबाद में स्थित कोशिकीय और आण्विक जीवविज्ञान केंद्र के निदेशक है। केंद्रीय अपराध जांचविज्ञान प्रयोगशाला, हैदराबाद के डॉ. वी. के. कश्यप ने सर्वप्रथम इस तकनीक को वैधानिक स्वीकृति दिलाई थी।

भारत में हैदराबाद स्थित कोशकीय और आण्विक जीव विज्ञान केन्द्र देश का एकमात्र ऐसा केंद्र है, जहाँ डी.एन.ए. जाँच की सुविधा व्यवस्था है। दिल्ली के नेशनल स्कूल ऑफ इम्यूनोलॉजी तथा राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो में पौधों की भी डी.एन.ए. अंगुलिछाप की सुविधा उपलब्ध है।

डी.एन.ए. जाँच के लिए संबंधित व्यक्तियों तथा पौधों की कोशिकाओं के नमूने लिये जाते हैं और उनमें एंजाइम मिलाकर छोटे-छोटे टुकड़े बना लिए जाते हैं। इलेक्ट्रोफोरोसिस द्वारा इन टुकड़ों को विभिन्न लम्बाई के वर्गों में रेखांकित किया जाता है।

पुनः इन टुकड़ों को संदर्भ ब्लोटिंग विधि के तहत् रेडियोएक्टिव विलायकों में मिलाकर यू.टी.आर. बनाया जाता है। इन यू.टी.आर. को एक्स-रे फिल्म में छाप लिया जाता है। इसके बाद तैयार डी.एन.ए. अंगुलिछाप को जाँचा परखा जाता है। यू.टी.आर. की लम्बाई यदि मिलती है तो डी.एन.ए. के नमूनों को समान माना जाता है और फिर निर्णय दिये जाते हैं।

इस विधि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें बहुत ही कम नमूने की जाँच की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, नमूना कितना भी पुराना हो उसका परीक्षण सफलतापूर्वक किया जा सकता है। मिस्र के हजारों वर्ष पुरानी एक ममी के डी.एन.ए. का परीक्षण किया गया है। डी.एन.ए. अंगुलिछाप के माध्यम से अपराधी की शीघ्रातिशीघ्र पहचान की जा सकती हैं और उसे सजा दी जा सकती है।

भारत में डी.एन.ए. अंगुलिछाप तकनीक पहली बार स्वर्गीय राजीव गाँधी की हत्यारिन धनु के अभिनिर्धारण में उपयोग में लायी गयी थी। धनु के अभिनिर्धारण के लिए श्रीलंका से प्राप्त उसके सगे सम्बन्धियों के रक्त नमूनों के डी.एन.ए. प्रतिरूप से उसके अपने डी.एन.ए. प्रोफाइल की तुलना कराकर उसकी पहचान सुनिश्चित की गयी थी। डी.एन.ए. अंगुलिछाप तकनीक को रोजमर्रा के उपयोग में लाने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं फिर भी यह एक अत्यंत संवेदनशील और महत्वपूर्ण जैव-विश्लेषण की तकनीक सिद्ध हुई है।

2884HRD—4B

अध्याय - 9

अंग-प्रतिरोपण और जीन चिकित्सा

मनुष्य के शरीर में किसी अन्य प्राणी के अंगों को प्रतिरोपित करने की विधि की तकनीक अंग-प्रतिरोपण (जेनोट्रांसप्लान्टेशन) है। किसी जीव में दूसरे जीव का अंग प्रतिरोपित कर देने से उस जीव की सम्पूर्ण प्राकृतिक कार्य संरचना प्रभावित हो जाती है, क्योंकि उस जीव की प्रतिरक्षा प्रणाली प्रतिरोपण का विरोध करती है। शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली में एक ऐसा तत्व होता है जो बाह्य अंग को तुरन्त पहचान लेता है। इस तत्व को पूरक (काम्प्लीमेंट) की संज्ञा दी जाती है। मानव शरीर के भीतर कोशिकायें डिक त्वरिक कारक से ढकी रहती हैं। डी.एन.ए. एक प्रकार का प्रोटीन है। पूरक द्वारा अन्य जीव के अंग प्रतिरोपण या किसी अन्य तत्व के प्रतिरोपण की पहचान इसी प्रोटीन (डी.एन.ए.) की सहायता से की जाती है। अंग-प्रतिरोपण एक कठिन प्रक्रिया है। पहले प्रतिरोपण के लिए मानव अंगों का उपयोग किया जाता था। परंतु हृदय जैसे अंगों को जिस मनुष्य से लिया जाता था उसकी अवश्य ही मृत्यु हो

जाती थी। यद्यपि गुर्दे जैसे अंगों के निकालने से मनुष्य मरतां नहीं था परंतु बाकी जीवन पूर्ण रूप से स्वस्थ होकर भी नहीं बिता पाता था। अतएव अंग दान करने वाले मनुष्यों की संख्या में कमी आने लगी। साथ ही अंग दान करने पर अनेक कानूनी रोक लगा दी गई। इसलिए मनुष्यों में अंग प्रतिरोपण के लिए जानवरों खासकर सुअर के अंगों के इस्तेमाल करने पर शोध किया जा रहा है। सुअरों की चयापचय क्रिया (मेटाबोलिज्म) मनुष्यों के समान होती है। इसलिए सुअरों के अंगों को मनुष्यों के अनुकूल समझा जाता है। इस संबंध से हमारे देश में भी प्रयोग किए गए थे। सन् 1996 में असम के डॉ. धनीराम वर्मा ने पूर्ण सैकिया नाम के एक रोगी में सुअर का दिल प्रतिरोपित किया था परन्तु यह रोगी शीघ्र ही मर गया था और अंग-प्रतिरोपण का यह प्रयास असफल हो गया था। आजकल मनुष्यों के दिल के वाल्वों के स्थान पर सुअरों के वाल्वों का प्रतिरोपण आम बात हो गई है।

जीन चिकित्सा

किसी आनुवंशिक रोग से सम्बद्ध किसी रोगी जीन के स्थान पर सामान्य जीन प्रतिस्थापन करने की प्रक्रिया जीन चिकित्सा कहलाती है। इस चिकित्सा में विकृत या अनुपस्थित जीन को पहचाना जाता है, उसे काट कर निकाल कर बाहर से उसकी जगह पर स्वस्थ जीन को जीनोम से जोड़ा जाता है। यह चिकित्सा मुख्यतः दो स्तरों पर हो सकती हैं: (1) भ्रूण उपचार (2) रोगी उपचार।

भ्रूण उपचार में भ्रूण में ही असामान्य जीन को सामान्य जीन में प्रतिस्थापित करते है। रोगी उपचार में रोग के प्रकट होने वे

बाद जीन चिकित्सा की जाती है। सैद्धांतिक रूप से यह कार्य सरल लगता है किन्तु व्यवहार में ऐसा करने के लिए अनेक तकनीकी बाधाएं पार करनी होती हैं।

एक सामान्य जीन श्रृंखला में किसी विशेष जैविक क्रिया को करने वाले प्रोटीन के संश्लेषण हेतु सभी आवश्यक सूचनायें रहती हैं। जीन श्रृंखला में किसी भी परिवर्तन से प्रोटीन के ढाँचों में परिवर्तन हो जाता है। प्रोटीन के कार्यों में भी परिवर्तन हो जाता है जिससे एक रोगी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह पता लगाने के लिए कि कोई रोग जीन चिकित्सा से ठीक हो सकता है या नहीं, सबसे पहले लक्षित जीन का पता लगाते हैं, फिर यह देखते है कि उसका सामान्य कार्य क्या है। और शरीर के किस ऊतक की कोशिका में चिकित्सकीय जीन डाली जानी चाहिए। जिससे जननिक रूप से सही न होने वाले कार्यों को ठीक किया जा सके। जीन हस्तान्तरण के लिए वाहकों का प्रयोग किया जाता है, जिसके फलस्वरूप या तो चिकित्सकीय जीन लक्षित कोशिका के गुणसूत्रीय डी.एन.ए. के साथ सहयुग्म बनाकर जुड़ जाती है या चिकित्सकीय जीन बिना सहयुग्म से स्थायी लक्षण मिलते हैं जब बिना समाकलन (नान इन्टीग्रेशन) से प्राप्त लक्षण अस्थायी होते हैं।

जीन हस्तान्तरण दो प्रकार के वाहकों से होता है :

1. पारसंक्रमण (ट्रांसफेक्शन)

इस विधि में डी.एन.ए. को सीधे ही कोशिकाओं में डाल दिया जाता है। किन्तु इसमें वाहकों के उपयोग से क्षमता बढ़ जाती है। ये वाहक निम्न है (1) लाइपोसोम (2) कैल्शियम फॉस्फेट (3) पॉलिकेशन (4) मॉलीक्यूलर कंजुगेट। कोशिकाओं में डी.एन.ए. का

जीन गन द्वारा भी प्रतिरोपित किया जा सकता है। जीन गन द्वारा जीवित कोशिकाओं में डी.एन.ए. डालने के लिए उच्च ऊर्जा वाले छोटे कणों (माइक्रोपार्टिकल) की बमबारी की जाती है।

संक्रमण (इन्फेक्शन)

इसमें विषाणु की सहायता से कोशिका में चिकित्सकीय जीन को पहुँचाया जाता है। इसमें कोशिकाओं को संक्रमित करने की विषाणु की प्राकृतिक क्षमता का ही लाभ उठाया जाता है। उदाहरणार्थ, एन्ट्रोविषाणु, एन्डिनोविषाणु, एन्हिनोविषाणु, एन्डिनोएसोसिएटेड विषाणु, हर्प्स विषाणु, वैक्सीनिया विषाणु आदि। लक्षित कोशिका में वाहकों को दो प्रतिक्रियाओं से हस्तान्तरित किया जा सकता है :

(1) उध जीवे (एक्स विवो) प्रक्रिया (2) जीवे (इन विवो) प्रक्रिया।

एक्स जीवे प्रक्रिया में कोशिका को लक्षित अंगों में से निकाल कर उसमें चिकित्सकीय जीन डाल दी जाती है तथा फिर उसे रोगी में वापस प्रतिरोपित कर दिया जाता है। यह तकनीक अधिक अपनाई जाती है। इस प्रक्रिया में जीन हस्तांतरण सिर्फ उन्हीं कोशिकाओं तक सीमित रहता है जिन्हें शरीर से विलग किया जाता है। इससे संवर्धन द्वारा वर्धित लक्षित कोशिका को ज्यादा नियंत्रित तरीके से प्रसार किया जाता है। इससे जीन हस्तान्तरण की दक्षता को परखा जा सकता है। एक्स जीवे तकनीक का प्रयोग सिर्फ उन कोशिकाओं तक ही सीमित है जो परिसंचरणात्मक हैं जैसे—लसिकाणु (लिम्फोसाइट) या वे कोशिकाएं जिन्हें शरीर से बाहर निकालकर प्रसारित होने को प्रेरित किया जा सकता है जैसे- 'यकृताणु' (हेपोटोसाइट्स), अस्थि मज्जा की कोशिकाएं, 'तंतु प्रसु' (फाइब्रोब्लास्ट)। जीवे (इन विवो) प्रक्रिया में

चिकित्सकीय जीव के वाहक को सीधे रोगी में प्रतिरोपित कर दिया जाता है। इस तकनीक का उपयोग उन कोशिकाओं में किया जाता है जिनकी प्रसार करने की क्षमता ज्यादा नहीं होती, जैसे- तंत्रिओन (न्यूरॉन) या वे कोशिकाएं जिन्हें शरीर में आसानी से प्रतिरोपित नहीं किया जा सकता, जैसे- श्वास तंत्र में एपीथिलिएल कोशिकाएं।

किसी मरीज की विकृत जीन की पहचान करने के बाद उसको तीन प्रकार से ठीक जा सकता है :

(1) जीन प्रतिस्थापन (रिप्लेसमेन्ट)

विकृत जीन को निकाल कर उसकी जगह स्वस्थ्य जीन को लगाना।

(2) जीन शोधन

जीन में आण्विक विकारों को थोड़ा परिवर्तित करके उपचारित करना,

(3) जीन वृद्धि

कोशिकाओं में विकृत जीन के साथ स्वस्थ्य जीन को डाल देते है जो स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करती है और विकारों को दूर कर देती है।

जीन चिकित्सा में कई प्रकार की कोशिकाएं उपयुक्त की जाती हैं जो निम्न हैं जैसे- यकृताणु, अस्थि मज्जा की मूल कोशिकाएं (स्टेम सेल्स आफ बोनमेरो), पेशी कोशिकाएं, एल्जाइमर बीमारी, सी.एन.एन. पार्किन्सन बीमारी स्विन-डेप्ट ऑफ कागुलेशन फैक्टर 9, कैंसर कोशिकाएं-पी 53 जीन को बाहर से डाला जा सकता है। ये कैंसर कोशिकाओं के विभाजन को रोकती हैं और अर्बुद (ट्यूमर) को कम करती है।

जीन चिकित्सा अभी तक सिर्फ प्रयोगशाला परीक्षण का ही विषय रही है, किन्तु इसके अनेक प्रयोगशाला परीक्षण अत्यन्त उत्साहवर्धक रहे हैं। जीन चिकित्सा का उपयोग न सिर्फ आनुवंशिक रोगों के इलाज में किया जा सकता है वरन एड्स जैसे संक्रमण के इलाज में भी किया जा सकता है। वर्तमान में जीन चिकित्सा अत्यन्त खर्चीली है जो सामान्य व्यक्ति की पहुँच से बाहर है किन्तु यह आशा की जा सकती है कि भविष्य में जीन चिकित्सा साधारण दवाइयों के इलाज की सम्पूरक बन सकेगी तथा एक्स जीवे तकनीक जो कि ज्यादा खर्चीली है, के स्थान पर जीवे तकनीक का बड़ी मात्रा में प्रयोग हो सकेगा। आशा है भविष्य में जनन परम्परा (जर्मलाइन) जीन चिकित्सा संभव हो सकेगी इसमें जनन कोशिकाओं अर्थात शुक्राणु (स्पर्म) तथा अण्डाणु (ओवम) में आनुवंशिक परिवर्तन करके वांछित परिणाम प्राप्त किए जा सकेंगे। जनन परम्परा उपयोग करके मानवीय क्षमताओं, जैसे- बुद्धि, स्मरणशक्ति, शारीरिक बनावट आदि में वांछित परिवर्तन किया जा सकेगा। किन्तु इसके सामाजिक पहलू भी हैं जिनके तहत आनुवंशिक उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) द्वारा मानवता के विपरीत अनेक कार्य किए जा सकते हैं।

एड्स में जीन चिकित्सा

यह कोशिकाओं में विषाणु के प्रजनन को रोकती है और इस तरह शरीर की रक्षा करने वाली कोशिकाओं को नष्ट करने से बचाती है (डी 4 प्लस टी लसिकाणु)।

वाहिका जनन (एन्जियोजेनेसिस) तथा जीन चिकित्सा

हृदय रोग से ग्रसित 40% मरीजों में अभी तक वर्तमान इलाज की तकनीकों द्वारा पूरा आराम नहीं मिलता और रक्त धमनियाँ फिर से बन्द हो जाती है। ऐसे मरीजों में— संवहनी वृद्धि कारक (बैसकुलर इन्डोथीलियम ग्रोथ फैक्टर) को ज्यादा मात्रा में बना दिया जाता है। अथवा माँस पेशियों में इंजेक्शन द्वारा इस पदार्थ को बनाने वाली जीन को देकर मरीज के शरीर में इसका बनना बढ़ा सकते हैं।

ओरेगन क्षेत्रीय प्राइमेट सेंटर के वैज्ञानिकों ने 2 अक्टूबर 2000 को विश्व के प्रथम आनुवंशिक रूपांतरित (जेनेटिकली माडीफाइड) रीसेस बन्दर ('एन्डी') को बनाने में सफलता प्राप्त की है। 'एण्डी' के निर्माण में जीन चिकित्सा तथा अन्य जीवों में इस्तेमाल किए जाने वाले आनुवंशिक रुपान्तरण विधि को अपनाया गया। यह खोज डायबेटीज, अल्जीमर रोग, स्तन कैंसर, पार्किसन रोग और एड्स-जैसे रोगों के चिकित्सकीय निदान की दिशा में बहुत महत्वपूर्ण है। नवम्बर 2000 में जैवप्रौद्योगिकी विधि से अनुवांशिक चयनित एक बच्चे का जन्म हुआ जो एक असाध्य रोग से मुक्त पाया गया। इसके भ्रूण को गर्भ में प्रतिरोपित करने के पूर्व ही इसका आनुवंशिक परीक्षण किया गया तथा इसे रोगमुक्त करने के बाद माँ के गर्भ में प्रतिरोपित किया गया। इस बच्चे का नाम 'बैलेन्टीन' रखा गया है।

कुछ मिलाकर जीन चिकित्सा का भविष्य उज्जवल है तथा इसका नियंत्रण प्रयोग न सिर्फ मानव वरन् समस्त जीवत जगत के लिए हितकारी परिणाम ला सकेगा।

निश्चित रूप से जीनों में मनंचाहा बदलाव लाने के बाद पैदा होने वाले बच्चों का स्वास्थ्य बेहद अच्छा होगा। अब एक रोग रहित समाज की कल्पना की जा सकती है लेकिन साथ ही डर है कि कही ऐसा समाज बाकी के कमजोर समाज को तिरस्कार की दृष्टि से न देखने लगे। जीन चिकित्सा निश्चित रूप से बहुत महंगी है और गरीब वर्ग की पहुँच से दूर है। कही समाज में एक नयाभेद समाजिक समरसता को नष्ट न कर दे। अब जीनोमिक युग के माध्यम से मानव ईश्वर के कार्य क्षेत्र में प्रवेश करने की कोशिश कर रहा है। उसकी उम्र अविश्वसनीय हद तक बढ़ सकती है, इससे समाज का ताना बाना भी बिगड़ सकता है। देखना यह है कि जीनोमिक युग की यात्रा मानव के वश में रहेगी या नहीं?

अध्याय - 10

टीका

टीका (वैक्सीन) द्वारा रोग निरोध अत्यन्त सरल व सुविधाजनक, प्रभावी तथा सर्वाधिक वांछनीय स्वास्थ्य रक्षक विधि है। 1970 से जैवप्रौद्योगिकी का उपयोग कर टीको को बनाने का क्रम शुरू हुआ। ये टीके पूर्ण कोशिका वाले टीकों की तुलना में शुद्ध, सुरक्षित स्थायी और पार्श्व प्रभावों से मुक्त थे। जैवप्रौद्योगिकी से टीका उत्पादन के प्रमुख उपाय है :

1. संक्रमण प्रतिरोधी सतही प्रोटीन का पुनर्योजी डी.एन.ए. क्लोनन करके,
2. पॉली पैप्टाइड टीकों का रासायनिक संश्लेषण करके,
3. पुनर्योजी विषाणुओं (जो बाहरी सतह प्रोटीन में प्रविष्ट होने वाले जीनों से मुक्त हो) का संश्लेषण करके,
4. अपैथोजेनिक उत्परिवर्तकों की जीन आनुवंशिकी द्वारा संक्रमण प्रतिरोधी सतही प्रोटीनों के गुणों की आवृति करने वाले एक क्लोनीय प्रतिरक्षी के उत्पादन द्वारा।

सबसे पहले ब्रिटेन के डॉ. एडवर्ड जेनर ने 1776 – 78 में चेचक के टीके का विकसित करने में सफलता प्राप्त की थी।

1880 में फ्रांस के डॉ. लुई पाश्चर ने हैजा और रेबीज से बचाव के लिए टीके विकसित किया। पोलियो के टीके का विकास जोनास साल्क ने किया जबकि ओरल पोलियो वैक्सीन की खोज का श्रेय डॉ. अल्बर्ट सेविन को जाता है। इस टीके की खुराक मुँह से दी जाती है और हर खुराक में दो बूँद दवा पिलाई जाती है। इससे पोलियो विषाणु के प्रतिरक्षी उचित मात्रा में बन जाते हैं जिससे रोग से बचाव हो जाता है। कालांतर में भारत में भी पोलियो के मौखिक वैक्सीन के लिए पूर्व सोवियत संघ के सहयोग से बुलन्दशहर में 'भारत जैवप्रतिरोधक एवं जैविक निगम लिमिटेड' और विषाणु-टीका के उत्पादन के लिए फ्राँस के सहयोग से गुड़गांव में 'भारतीय टीका निगम लिमिटेड' की स्थापना की गई।

1950 से 1990 तक की अवधि टीकों के विकास का स्वर्ण-युग माना जाता हैं। इस दौरान विभिन्न बीमारियों, जैसे- खसरा, क्षयरोग, एन्थ्रेक्स, टिटेनस, डिप्थीरिया, ग्रेंगीन, इन्फ्लूएंजा आदि के टीकों का विकास हुआ। अब पशुओं के लिए भी मोतियाबिन्द, एन्थ्रेक्स और टिटेनस आदि के टीके उपलब्ध हैं।

आनुवंशिकी की मदद से 1982 में मधुमेह की चिकित्सा के लिए इंसुलिन का निर्माण हुआ। 'मेहरिंग और मिकोवस्की' ने सर्वप्रथम पता लगाया कि मधुमेह का सम्बन्ध अग्नाशय से है। इसके बाद कनाडा के दो वैज्ञानिकों 'बेटिंग' और 'बेस्ट' ने सन् 1922 में ही इंसुलिन का निष्कर्ष (इक्सट्रैक्ट) तैयार किया। 'लैंगर' नामक वैज्ञानिक ने 1958 में गाय की इंसुलिन (बोवाइन इंसुलिन) से पता लगाया कि यह एक पॉलीपेप्टाइड है। इस कार्य के लिए इन्हें नोबुल पुरस्कार मिला था। इंसुलिन ही पहला प्रोटीन हैं जिसे

प्रयोगशाला में संश्लेषित किया गया था। अभी हाल में ही वैज्ञानिकों ने मानव भ्रूण से कोशिका लेकर उससे इंसुलिन बनाने में भी सफलता प्राप्त की है। इससे मधुमेह के रोगियों के इलाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आने की सम्भावना है।

ब्रिटेन के वैज्ञानिकों का मत है कि मधुमेह के रोगियों को दिए जाने वाले इंजेक्शन 'बबून' में सुअर के अग्न्याशय की कोशिका मिलाने से प्रतिदिन लगने वाले इंसुलिन के इंजेक्शन से छुटकारा पाया जा सकता है। ड्यूक विश्वविद्यालय में किए गए प्रयोगों से पता चला है कि सुअर के अग्न्याशय की कोशिका इंजेक्शन में मिलाकर मधुमेह के रोगी को दिए जाने से इंसुलिन के इंजेक्शन की आवस्यकता नहीं रही। बाजार में बबून का इंजेक्शन 'बाबस-92' के नाम से बेचा जाता है। प्रयोगों का नेतृत्व करने वाले 'एनामुअल ओपेरा' का मत है कि यदि यह प्रयोग सफल होता है तो अगले दो वर्षों में यह तकनीक मधुमेह के रोगियों को उपलब्ध करा दी जाएगी।

आनुवंशिकी तकनीकी के माध्यम से बौनापन के लिए मानव वृद्धि हारमोन (1990), कैंसर के लिए इण्टरफेरॉन (1987), विषाणु रोधी इण्टर फेरॉन (1988), हेपेटाइटिस बी वैक्सीन (1990) आदि टीकों का विकास हुआ है।

इंटरफेरॉन

इंटरफेरॉन विषाणुओं के संक्रमण को रोकने के लिए शरीर में बनने वाले रसायन हैं। ये ऐसे विभिन्न उपयोगों वाले प्रोटीन अणु हैं जो शरीर में बनने वाली प्रोटीन का विषाणुओं के विरुद्ध उपयोग करके (अर्बुद) ट्यूमर को खत्म करने में सहायक होते हैं।

1957 में लंदन के नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर मेडिकल रिसर्च के एलिक आइलेक और जीन लिडेनमेन ने विषाणु से प्रभावित कोशिकाओं से मुक्त एक प्रोटीन (जो अन्य कोशिकाओं को विषाणुओं के संक्रमण का प्रतिरोध करने में सक्षम बना देती है) को इन्टरफेरॉन कहा। सातवें दशक में पुनर्योजी डी.एन.ए. तकनीक के विकसित होने पर इन्टरफेरॉन का बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव हो सका।

भारत में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ वाइरोलॉजी पुणे, केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान; लखनऊ, हाँफकिन संस्थान; मुम्बई में इन्टरफेरॉन के नैदानिक गुणों का अध्ययन किया गया है।

डी.एन.ए. वैक्सीन

डी.एन.ए. वैक्सीन में विभिन्न बीमारियों से बचाव करने वाले पदार्थों के जीन को डाल दिया जाएगा। इसका परिणाम प्रोटीन टीकों से बेहतर होगा। आजकल अनाजों एवं सब्जियों में बाहर से जीन डालकर विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाई जा सकती हैं जिससे एनीमिया आदि बीमारियों से बचाव हो सकता है।

अध्याय - 11

क्लोनन

एक कोशिका के विभाजन से कोशिका समूह की प्राप्ति को **क्लोनन (क्लोनिंग)** कहते है, और इस समूह को क्लोन कहा जाता है। एक क्लोन की सभी कोशिकाओं का जीन रूप (जीनोटाइप) एकसमान होता है। क्लोन एक ऐसा जीवित प्राणी (आरगेनिज्म) है जो मात्र एक कोशिका से अलैंगिक विधि से उत्पन्न होता है। क्लोन अपने जनक से भौतिक एवं आनुवंशिक रूप से बिल्कुल समान होता है। क्लोनन से नाभिक स्थानान्तरण तकनीक द्वारा केंद्रक रहित डिम्ब में समाविष्ट कर समरूप क्लोन्स प्राप्त किए जाते है। कृषि और बागवानी के क्षेत्र में तो क्लोन की प्रक्रिया प्राचीन काल से चल रही है, परन्तु जन्तुओं के निर्माण में क्लोनन का उपयोग हाल के वर्षों में होने लगा है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत प्रायः केंद्रक अंतरण (न्यूक्लियस ट्राँसफर) विधि का उपयोग किया जाता है। कोशिका का केंद्रक (न्यूक्लियस), गुणसूत्र (क्रोमोसोम) तथा जीन का भण्डार होता है। इसलिए केंद्रकीय अंतरण विधि के अंतर्गत कोशिका के केंद्रक को यांत्रिक रूप से

निकाल लिया जाता है और ये सभी आनुवंशिक सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। जिन्हें केन्द्रक रहित अण्डाणु में प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। इसके बाद उन पर हल्की विद्युत तरंगों को प्रवाहित करके निषेचन प्रक्रिया आरम्भ कराई जाती है, कोशिका का तीव्र विभाजन शुरू हो जाता है। इस प्रक्रिया के तहत पूर्ण विकसित अण्डाणु को प्रतिनियुक्त माँ (सूरोगेट मदर) के गर्भ में आरोपित कर दिया जाता है। गर्भ में बच्चे के विकास के उपरान्त उसका जन्म होता है।

स्काटलैण्ड (ब्रिटेन) स्थित रोसलीन इंस्टीट्यूट के डॉ. इयान विलमुट के नेतृत्व में वैज्ञानिकों ने 1996 में भेड़ की एकल कोशिका से "डॉली" नामक मेमना को पैदा कर विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। "डॉली" के सारे जीन अपने माँ-जैसे हैं वैज्ञानिकों ने एक छह वर्षीय गर्भवती भेड़ के थन से कुछ कोशिकाएं निकाली और उन्हें निद्रालीन कर दिया। इस अनुसंधान के दूसरे हिस्से में वैज्ञानिकों ने एक अन्य मादा भेड़ से एक अनिषेचित अण्डाणु निकाला और इस अण्डाणु से उसका केंद्रक अलग कर दिया लेकिन इसमें कोशिकाद्रव्य और अन्य सामग्रियों को उसमें मौजूद रहने दिया। इसके बाद केंद्रक रहित अण्डाणु को निद्रालीन कोशिका के साथ रखकर उन पर बिजली की हल्की तरंगें डालीं। इस प्रक्रिया के दौरान अण्डाणु ने निद्रालीन कोशिका के केंद्रक को स्वीकार कर लिया। कोशिकाओं के इस मिलन से जैव-रासायनिक प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई और साथ ही आरम्भ हुआ कोशिका विभाजन। इससे एक भ्रूण का निर्माण हुआ, जिसको एक तीसरी भेड़ के गर्भाशय में प्रतिरोपित कर दिया गया। पाँच माह की गर्भावधि पूरी

होने के पश्चात "डॉली" का जन्म हुआ जो अपनी मूल माँ की ही प्रतिरूप है। इस प्रक्रिया में विशेष बात यह थी कि कोशिका किसी प्रजनन अंग की व जाय भेड़ के थन से निकाली गई थी। विश्व में ऐसा पहली बार किया गया।

भारतीय वैज्ञानिकों ने भैंस के एक भ्रूण से अनेक समरूप बछड़े पैदा करने की विधि विकसित कर ली है। केंद्रक अंतरण तकनीक से करनाल (हरियाणा) के वैज्ञानिकों ने एक भैंस में डिम्ब की केंद्रिका को निकालकर उसकी जगह उत्कृष्ट गुणों वाली भैंस के भ्रूण की एक कोशिका प्रतिरोपित कर दी। करनाल के वैज्ञानिकों की यह तकनीक ब्रिटेन के रोसलीन इंस्टीट्यूट की तकनीक से बिल्कुल अलग है। ज्ञातत्व है कि विश्व में भारत की भैंस सर्वश्रेष्ठ प्रजातियों की हैं। करनाल के राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने वर्ष 1998 में पहली बार भैंस का क्लोन सफलतापूर्वक निर्मित किया। इस सफलता के बाद अब मनचाही संख्या में रोगरहित, स्वस्थ और सर्वश्रेष्ठ किस्म की भैंसें प्राप्त की जा सकती है।

हवार्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने क्लोनन की उन्नत तकनीक विकसित की है जिसे "होनोलूलू तकनीक" के नाम से जाना जाता है। इस तकनीक से चूहे की एक क्लोन कोशिका से पचास से भी अधिक चूहे तैयार कर लिए गए है। जैव चिकित्सा के प्रयोगों में ज्यादातर चूहे ही इस्तेमाल किये जाते हैं। अतः क्लोन से तैयार होने वाले चूहों से मौलिक जीव विज्ञान और औषधि तथा औषधि विकास के क्षेत्र में भी व्यापक सम्भावनाएं उत्पन्न हो गई हैं और अनुसंधानों को एक नई दिशा मिली है।

हाल में ही जापान में एक बछड़े का क्लोन (96 पौंड का बछड़ा) पैदा हुआ। अमेरिका के आरेगन राज्य में 'ट्रेटा' नाम का एक बंदर पैदा हुआ। ट्रेटा का जन्म डॉली के लिए अपनाई गई विधि से नहीं किया गया। इसमें बहुत ही आरंभिक भ्रूण को चार भागों में विभाजित किया गया। इस प्रकार एक चौथाई भ्रूण से एक स्वस्थ मादा बंदर क्लोन के रूप में निर्मित हुई। वैज्ञानिकों ने "साइंस" पत्रिका में लिखा कि यह विधि मवेशियों को पैदा करने हेतु सामान्यतः अपनाई जाती है, लेकिन बंदर के जन्म में पहले कभी नहीं अपनाई गई।

वैज्ञानिकों ने विभिन्न जन्तुओं के डी.एन.ए. को गर्भाशय में प्रतिरोपित कर उसके हमशक्ल तैयार कर लिए हैं, जिससे भविष्य में जीवों की नस्ल सुधार कर विलुप्त होती जा रही है प्रजाति के जीवों को भी बचाया जा सकता है। जन्तुओं के क्लोन हासिल करने के बाद अब मनुष्यों के भी क्लोन प्राप्त करने या न करने पर विश्वव्यापी बहस छिड़ गयी है।

पशुओं पर तैयार क्लोन मानव चिकित्सा में बहुआयामी होगा। बाथ विश्वविद्यालय, ब्रिटेन के डॉ. जोनाथन स्लैक ने क्लोनन तकनीक से सिरविहीन मेढ़क का भ्रूण तैयार किया है। इस प्रकार के क्लोन से मानव अंगों और ऊतकों का विकास किया जा सकता है। आस्ट्रेलियाई वैज्ञानिक एलेन ट्राऊन्सन का दावा है कि इससे बुढ़ापे पर भी विजय प्राप्त की जा सकेगी।

इसके अतिरिक्त क्लोनन द्वारा लगभग सभी प्रकार के औषधीय महत्व के द्रव्य प्राप्त किए जाने की सम्भावना है। जो होमोफीलिया तथा आनुवंशिक रोगों के निदान में क्रांतिकारी योग देंगे।

चीनी वैज्ञानिकों ने **'वीनस'** नाम से एक दुर्लभ फूल का क्लोन तैयार किया है जो मक्खियों को पकड़ कर खा जाता है और मच्छरों को दूर भगा देता है। शंघाई स्थित बायोटेक कम्पनी के महाप्रबंधक बांग रोंगरोग ने बताया कि उनकी कम्पनी ने 'फ्लाईट्रेप' नामक फूल विकसित किया है और अब तक इसके 20 हजार क्लोन तैयार किये हैं। यह फूल 15 सेमो. से बड़ा नहीं होता और मक्खियों या मच्छरों के पास आने पर इसकी कलियाँ बन्द हो जाती हैं। यह माँस और पनीर के छोटे-छोटे टुकड़े भी खा सकता है।

पिछली सदी में विज्ञान की अनेक रोमांचकारी उपलब्धियों ने विश्वभर में तहलका मचा दिया है और इंसान के क्लोन बनाने की तैयारियाँ जारी हैं। अगली सदी में विज्ञान की उपलब्धियाँ क्या होगी? सबसे बड़ी उपलब्धि के अनुमान के रूप में संभवत; कई लोगों का उत्तर होगा इंसान के क्लोन बनने लगेंगे और बच्चों की वांछित रूप-गुण के अनुरूप आकर-प्रकार निर्धारित किया जा सकेगा। शिकागों के 79 वर्षीय भौतिक विज्ञानी रिचर्ड सीड तो ताल ठोंक कर कह रहे हैं कि अगले 24 महीनों में खुद अपना क्लोन तैयार कर दिखाएंगे। मानव क्लोन के सवाल पर अब आमने सामने की लड़ाई छिड़ गई है। अनेक प्रकार के विरोध के बावजूद इटली के विवादास्पद भ्रूण वैज्ञानिक प्रो. सेवेरिनो एंटीनोरी ने यह घोषणा कर दी है कि वह एक साल के भीतर मानव क्लोन तैयार करेंगे। उन्होंने वांशिगटन की राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी में इस बात का ऐलान किया है कि वह 200 महिलाओं को क्लोनन द्वारा तैयार भ्रूण के जरिये गर्भवर्ती बनाने की अपनी परियोजना पर काम करेंगें।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अमेरिकी जैवप्रौद्योगिक फर्म गेरो कारपोरेशन ने इतिहास में पहली बार आदमी के भ्रूणों के क्लोनो का पेटेंट ले लिया। यह पेटेंट ब्रिटिश सरकार ने दिया है। ब्रिटेन ने आदमी के क्लोन तैयार करने पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया है।

मानव जीनोम के अनुक्रम के रहस्योद्घाटन के बाद क्या अब जानवरों की तरह मानव का भी क्लोनन किया जा सकता है, या जीन में हेर-फेर किया जा सकता है? क्या जैवप्रौद्योगिकी एक ऐसी फैक्ट्री बनाने में सहायता करेगी जहाँ इच्छानुसार मानव के विभिन्न क्लोन बनाए जा सकेंगे (जैसे किसी कार फैक्ट्री में नये मॉडल तैयार किए जाते हैं)? वैज्ञानिकों के अनुसार, सैद्धान्तिक रूप से हाँ, लेकिन सम्भावनाएं बहुत कम है। जीन की विभिन्न भूमिकाओं को नियंत्रित करना असम्भव हैं। क्लोनन किसी व्यक्ति को जिन्दा नहीं कर सकता। क्लोनन से हूबहू वही व्यक्ति नहीं बनाया जा सकता क्योंकि जीन पर पर्यावरण का भी असर पड़ता है। दूसरे शब्दों में, जीन क्षमता को परिभाषित करता है लेकिन पर्यावरण से तय होता है कि क्षमता का पूरा इस्तेमाल होगा या नहीं।

अध्याय - 12

पराजीनी पौधे, जन्तु तथा निर्वंश जीन

जिस जन्तु या पौधे में आनुवंशिकी अभियांत्रिकी द्वारा एक या अधिक जीन स्थानांतरित किया गया हो उन्हें पराजीवी जीव कहते हैं। तथा मेजबान डी.एन.ए. के साथ स्थिर रूप से एकीकृत किए जाते हैं। इसके फलस्वरूप कायान्तरित पौधों द्वारा उपयुक्त जीन उत्पादन का संश्लेषण किया जाता है, जैसे- रोग प्रतिरोधी क्षमता, शाकनाशी प्रतिरोधी गुण और कीट एवं व्याधि प्रतिरोधी गुण। आजकल इसका इस्तेमाल प्रकाश संश्लेषण क्षमता, नाइट्रोजन यौगिकीकरण, संकर फसलें, खाद्य प्रसंस्करण फसलें और खेती को बढ़ावा देने के लिए किया जा रहा है।

भारतीय वैज्ञानिकों ने पराजीनी कपास, तम्बाकू, टमाटर तथा बैंगन में प्रयोगशाला स्तर पर बैसिलस थूरेन्जिएसिस (बी.टी.) नामक जीवाणु का जीन डालने में सफलता प्राप्त कर ली है। अभी हाल ही में ये दालों में बी.टी. जीवाणु जीन डालने में सफल हुए हैं जो कीटनाशी प्रोटीन तैयार करता है। इसका अर्थ है कि इन

फसलों में जहरीले रासायनिक कीटनाशी छिड़कने की जरूरत नहीं रह जाएगी और पौधे अपना कीटनाशी स्वयं बना लेंगे। विशेष बात यह है कि बी.टी. का जो जीन इन दालों में डाला जाता है वह प्राकृतिक रूप से मिट्टी में पाए जाने वाले बैक्टीरिया से नहीं लिया गया था बल्कि इसे प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से तैयार किया गया था। वैज्ञानिक इसे अब एक बहुत बड़ी अपलब्धि बता रहे हैं। भारत के इस अनुसंधान का आर्थिक तौर पर भी बहुत महत्व है। विश्व में कपास, मक्का, तम्बाकू, सोयाबीन, आलू और टमाटर की पराजीनी किस्में विकसित हो चुकी है। भारत में अरहर और चने में इस सफलता का विशेष महत्व है क्योंकि इस विषय में सबसे पहली सफलता भारतीय वानस्पतिक अनुसंधान संस्थान, लखनऊ को मिली।

हाल ही में चावल का आनुवंशिकी से रूपान्तरित विभेद विकसित किया गया है, इसे 'गोल्डेन राइस' नाम दिया गया है। इसका दाना पीले रंग का होता है। इस विभेद को विकसित करने हेतु जीन रूपान्तरित तकनीक में डैफोडिल व एक जीवाणु के जीन को चावल में स्थानान्तरित किया गया है। इससे यह चावल बीटा कैरोटीन नामक रसायन उत्पन्न कर सकता है। यह बीटा कैरोटीन विटामिन 'ए' के संश्लेषण में मदद करता है। 'गोल्डन राइस' के जीन को सेला चावल में स्थानान्तरित किया गया है क्योंकि अधिकतर भारतीयों द्वारा सेला चावल उपयोग में लाया जाता है। चावल की इस विभेद की खोज एक जर्मन वैज्ञानिक डॉ. इन्गो पोट्रिकस के द्वारा की गयी है। इन्होंने इस खोज पराजीनी तकनीक को सर्वसाधारण के कल्याण हेतु भारत को बिना किसी

शुल्क के उपलब्ध कराया है। विटामिन 'ए' की कमी से शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर पड़ने लगती है जिसके फलस्वरूप इनफ्लूएंजा, डायरिया, चेचक और अंधापन-जैसे रोग उत्पन्न हो सकते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार पाँच लाख लोग विटामिन ए की कमी से अंधेपन के शिकार हो गए हैं जिनमें से आधी से ज्यादा संख्या भारत में निवास करती है।

टैक्सास विश्वविद्यालय (संयुक्त राज्य अमेरिका) के वैज्ञानिक डॉ. मेलकम ब्राऊन ने अपने सहयोगियों के साथ **'एजोटोबैक्टर जाइलियन'** नामक जीवाणु से सेलुलोज बनाने वाली विशेष जीन को मिलाकर कपास के पौधों में प्रविष्ट कराकर कपास की एक पराजीनी प्रजाति विकसित की है। महाराष्ट्र की एक निजी बीज कम्पनी माइको ने देश में पराजीनी कपास का उत्पादन शुरू कर दिया।

जीन प्रत्यारोपण से बने पराजीनी पशु भी उपयोग में आने लगे हैं। वस्तुतः कुछ ही वर्षों में एक प्रजाति पशु के जीन दूसरी प्रजातियों के पशुओं में डालना सामान्य बात हो जाएगी। इस तकनीकी से उत्पन्न पराजीनी गाय 25 प्रतिशत तक अधिक दूध दे सकती है। सम्भावना यहाँ तक समुचित है कि गायों से प्राप्त दुग्ध मानव-जैसा हो सकेगा। इसके लिए मानव जीनों को गायों में स्थानान्तरित करने के तकनीक मौजूद हैं।

चीन के वैज्ञानिकों ने ऐसी पराजीनी बकरी का विकास किया है जिसमें मानव जीन उपस्थित होंगे। इससे वांछित प्रोटीन प्राप्त किया जा सकेगा। दूध ही क्यों इस तकनीक से जल में पनपने वाली खाद्य मछली, झींगा, केकड़ा आदि में भी इस तरह के

सुधार सम्भव हैं। अब तक निम्न जन्तुओं से पराजीनी जन्तु प्राप्त किए जा चुके है : चूहा, खरगोश, सुअर, भेड़, बकरी, गाय-भैंस, कुक्कुट, मछली, कीट, निमैटोड, मेढ़क आदि। किन्तु अभी तक यह प्रयास प्रयोगशाला तक ही सीमित है, और इसका व्यापारिक उपयोग अभी तक नहीं हो सका है। यह इस बात से स्पष्ट है कि वर्ष 1995 के आरम्भ तक संयुक्त राज्य अमेरिका में केवल पराजीनी चूहे के ही पेटेंट प्राप्त किए गए थे और पेटेंट लेने के बाद उसके व्यापारिक उपयोग में काफी समय लगता है। पराजीनी जन्तु जैविक चिकित्सकीय और जैवप्रौद्योगिकी शोध में अत्यंत उपयोगी होता है। ये पशु पालन, दुग्ध, औषधि आदि उपयोगों में नये और महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करते हैं। अभी तक के शोध परिणाम काफी उत्साहवर्धक रहे हैं किन्तु अभी इसके व्यापारिक स्तर पर उपयोग होने में कुछ समय लग सकता है।

पराजीनी बीज

बायोटेक बीजों का उपयोग फिलहाल सबसे ज्यादा उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में होता है जो विश्व के सबसे बड़े निर्यातक हैं। यहाँ पराजीनी बीजों के उपयोग से सोयाबीन और मक्का की उपज बढ़ाने में सफलता प्राप्त हुई है। अमेरिकी सोयाबीन एसोसिएशन का अनुमान है कि इस साल सोयाबीन की 30 फीसदी खेती में और मक्का और कपास की क्रमशः 25 और 40 फीसदी खेती में पराजीनी बीजों का इस्तेमाल होगा। जैव तकनीक से उत्पन्न बीजों के बारे में दावे किए जा रहे है कि इनमें ज्यादा उत्पाद देने के साथ-साथ और कई तरह की विशेषताएं हैं, जैसे- पराजीनी बीज के इस्तेमाल वाले खेतों में खरपतवार का न होना और बीज में ही

कीटनाशी का गुण होना। आजकल इन दावो की सच्चाई के बारे में कई देशों में परीक्षण हो रहे हैं। जिनमें आस्ट्रेलिया, चीन और दक्षिण अफ्रीका-जैसे देशों के अलावा भारत भी शामिल है। भारत-जैसे विकासशील देश में किसानों के मन में इसको लेकर कई तरह की आशंकाएं भी हैं। भारत में अमेरीकी कम्पनी मौन्सेटो और महाराष्ट्र की कंपनी माहिको ने मिलकर कपास के पराजीनी बीजों के विपणन का लाइसेंस लिया है जिसको लेकर किसानों ने बहुत ऐतराज किया था। आंध्र प्रदेश में किसानों ने विरोध प्रदर्शन किया और प्रयोग के तौर पर बोई गई कपास की फसल नष्ट कर दी। इसी तरह का प्रदर्शन महाराष्ट्र में भी हुआ। एक और चिन्ता की बात इन बीजों से उत्पादित अनाजों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव को लेकर है। पिछले साल एक घटना ऐसी भी हुई जब स्टारलिंग कम्पनी द्वारा प्रायोगिक तौर पर उत्पादित मक्का भूल से अंतर्राष्ट्रीय बाजार में पहुंच गई। वैज्ञानिकों का अंदेशा था कि इसके उपयोग से शरीर में एलर्जी की शिकायत हो सकती है। अंतिम समय में अमेरिका और जापान इस मक्का भंडार को बाजार से हटाने में सफल रहे अन्यथा एक बड़ी मानवीय त्रासदी हो सकती थी। विशेषज्ञों का मानना है कि प्रकृति से छेड़छाड़ करना पूरे तंत्र के नाश का कारण बन सकता है। किसी पौधे या प्राणी के जीन का दूसरे पौधे में प्रतिरोपण और उससे बीज बनाने की प्रक्रिया पारिस्थितिक संतुलन में गड़बड़ी पैदा कर सकता है।

इंपीरियल कॉलेज, लंदन, से जुड़े मैकक्राले और उनके साथियों ने नेचर पत्रिका में एक शोध पत्र प्रकाशित किया है। इससे साफ

जाहिर होता है कि इन बीजों की उपादेयता संदेह के घेरे में है। मैकक्राले और उनके साथियों ने 1990 में निर्वंश बीजों पर अपना अध्ययन शुरू किया था। इसके लिए उन्होंने चार फसलों अलसी, मक्का, शकरकंद और आलू को चुना। चारों फसलों के बीजों के जीन उपचार से संबंधित किया गया और उन्हें साधारण बीजों के साथ मिलाकर अलग-अलग खेतों में बोया गया। अगले 10 साल के लगातार परीक्षण का नतीजा निराशाजनक रहा। चारों फसल उत्पादकता की दृष्टि से अपेक्षित परिणाम नही दे सके।

तमाम आशंकाओं के बावजूद ज्यादा से ज्यादा उत्पादन कर अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के उद्देश्य से पश्चिमी देश जीन संबर्धित बीजों का धड़ल्ले से उपयोग कर रहे हैं। उनकी रणनीति जोर जबरदस्ती इन बीजों की विकासशील और गरीब देशों तक पहुँचाने की है जिससे एक बड़ा बाजार मिल सके। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जी जान से गरीब और विकासशील देशों के कृषि बाजारों पर कब्जा करने के प्रयास में लगी हैं। उनके इन प्रयासों में सरकारी मदद भी मिल रही हैं। अमेरिका ने तो पराजीनी बीजों को कथित तौर पर विश्व में भूख मिटाने का औजार बताया है। हालांकि मूल मकसद क्या है इसे कोई भी समझ सकता है। यूरोपीय देशों में भी निर्वंश बीजों को लेकर आशंकाएं व्याप्त हैं। ब्रिटेन में 'द गार्जियन' अखबार ने इन बीजों को लेकर एक सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के नतीजे चौंकाने वाले निकले। मात्र 14 प्रतिशत लोग ही जीन संवर्धित बीजों के प्रयोग से सहमत थे। शेष 86 प्रतिशत लोगों ने राय व्यक्त करते हुए कहा कि ऐसे बीजों से तैयार उत्पादो पर एक किस्म का लेवल लगा होना चाहिए।

निश्चित रूप से उनके मन में आशंका रही। इस परिस्थिति में भारत सरकार को चाहिए कि कोई भी फैसला जल्द बाजी में न ले।

हाल ही में कृषि मंत्रालय ने माँन्सेटो को फिर माहिको के साथ मिलकर कपास के उत्पादन में पराजीनी बीजों के इस्तेमाल की अनुमति देने के लिए विभिन्न संगठनों से बातचीत शुरू की है। ऐसा कोई भी कदम उठाने से पहले कृषि वैज्ञानिकों से सलाह लेना जरूरी है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की राय में निर्वंश बीज के आम इस्तेमाल की अनुमति देने से पहले कम से कम 10 साल तक प्रयोगिक तौर पर उत्पादन और अध्ययन करने की आवश्यकता है।

निर्वंश जीन

निर्वंश या टर्मिनेटर जीन एक ऐसा जीन है जिसको किसी फसल के बीज में डाल देने पर उसकी प्रजनन शक्ति समाप्त हो जाती है। इस जीन की खोज और सम्बन्धित तकनीक का विकास अमेरिकी कम्पनी डेल्टा एण्ड पाइन लैण्ड, और यूनाइटेड स्टैन्डर्डस् डिपार्टमेन्ट आफ एग्रीकल्चर (यू.एस.डी.ए.) ने किया है। निर्वंश जीन वाले बीज से उगायी गयी पहली फसल तो सामान्य होगी परन्तु दूसरी फसल में बीज नहीं बनेंगे। निर्वंश जीन का पेटेंट कन्ट्रोल ऑफ प्लान्ट एण्ड जीन एक्सप्रेशन के नाम से जून 98 में (अमेरिका के पेटेंट कार्यालय में पेटेन्ट संख्या 5723765) कराया गया। किसानों पर इसका असर यह होगा कि निर्वंश बीजों से उगाई गई पहली फसल तो सामान्य होगी पर उस फसल से लिए गए बीजों से यदि अगली फसल उगाई जाएगी तो उसमें दाने नहीं

अध्याय - 13

ऊतक संवर्धन एवं उपलब्धियाँ

ऊतक संवर्धन तकनीक फसलों की प्रजातियों को सुधारने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस तकनीक में पौधे के किसी भी हिस्से के बारीक टुकड़े लेकर उसे पूरी खुराक (हार्मोन, खनिज लवण, ग्लूकोज आदि) देकर उसकी कोशिकाओं को बढ़ाया जा सकता है।जिससे बाद में पूरा पौधा बन जाता है। इस विधि से उत्तम कोटि के पौधे (क्लोन) लाखों की संख्या में कम से कम समय में तैयार किए जा सकते हैं।

ऊतक संवर्धन प्रौद्योगिकी द्वारा कृत्रिम रूप से वांछित गुणों के ऊतकों, कोशिकाओं तथा अंगों का निर्माण किया जा सकता है। हाल के कुछ वर्षों में भारतीय वैज्ञानिकों ने ऊतक संवर्धन द्वारा विभिन्न पौधों की विभिन्न प्रजातियां विकसित की हैं, जो आर्थिक तथा उत्पादन की दृष्टि से किसानों के लिए बहुत उपयोगी हैं। इस तकनीक द्वारा नारियल, पपीता, नींबू, अदरक, गन्ना, बाँस इत्यादि फसलों की विभिन्न प्रजातियां विकसित की गई है।

देश में इस क्षेत्र में अनुसंधान संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों में करीब पच्चीस स्थानों पर अनुसंधान कार्य चल रहे हैं। इनमें

विभिन्न विधियों, जैसे- क्लोनन, बहुगुणन, (क्लोनल मल्टीप्लीकेशन), पौध प्रजनन (प्लांट ब्रिडिंग) इत्यादि विधियों से पौधों की प्रजातियाँ विकसित की जा रहीं हैं। इन विधियों से छोटे आकार वाले, कम समय में फल देने वाले पौधों की बहुत-सी प्रजातियाँ विकसित करने में सफलता मिली है। बहुत से अनुसंधान केंद्रों में क्लोनन, बहुगुणन विधि अपनायी सफलता मिली है। ऊतक संवर्धन द्वारा उत्परिवर्तित पौधों की कोशिकाओं को भी विकसित करके उनकी प्रजातियाँ तैयार की जाती हैं। पौध प्रजनन में जटिल निषेचन क्रिया विधि (काम्प्लेक्स पॉलिनेशन मिकेनिज्म) द्वारा पौधों का संवर्धन किया जाता है।

ऊतक संवर्धन सूक्ष्म प्रवर्धन (माइक्रोप्रोपगेसन) के द्वारा भी होता है। इसमें पौधे की कोशिकाओं को पोषक माध्यम (न्यूट्रीएंट मीडियम) तथा कृत्रिम प्रकाश के अंतर्गत वातावरण में, संवर्धित कराया जाता है। इस विधि में इर्द-गिर्द का वातावरण निजर्मित कृत (स्टरलाइज्ड) होता है। फलतः जीवाणु या विषाणु पैदा नहीं होते हैं। और संवर्धित कोशिका भी जीवाणुओं विषाणुओं से मुक्त होती है। चूँकि प्रत्येक कोशिका में कोशिका-विभाजन द्वारा एक नए जीव देने की क्षमता होती है, इसलिए पौधों की किसी एक कोशिका को हम परखनली के अन्दर उपर्युक्त वातावरण प्रदान करके उसे संवर्धित कर सकते हैं। पोषक माध्यम में उपस्थित हार्मोन पोधों की कायिक वृद्धि (वेजिटेटिव ग्रोथ) को नियंत्रित करते हैं। ऊतक संवर्धन की एक नई प्रणाली विकसित हुई है, जिसे कायिक भ्रूणोदाब (सोमेटिक इम्ब्रियोजनेसिस) कहते हैं। इस विधि में पौधे के ऊतक को क्रियाशील करके उसकी कोशिकाओं

का अलग उपयुक्त वातावरण देकर उसका संवर्धन किया जाता है। हम ऊतक संवर्धन की विविध तकनीकों का प्रयोग करके व्यावसायिक खेती में क्रांतिकारी परिवर्तन कर सकते हैं। ऊतक संवर्धन तकनीक में पौधों के किसी अंग जड़, तना, पत्ती एवं फूल आदि से ऊतक निकालकर एक नया पौधा तैयार किया जा सकता है। इस विधि का उपयोग उन्हीं पौधों के लिए किया जाता है जिनमें आसानी से बीज नहीं बनते तथा कटिंग-गूटिंग, मुकुलन (बडिंग) भी सरलता से नहीं होती है पौधे तैयार करने की आम प्रचलित विधियों में लैगिंक जनन से बीज द्वारा पौधा उगाया जाता है तथा अलैंगिक जनन में कटिंग कलिका का उत्पन्न करना, गांठ बांधना और पौध बनाना आदि शामिल है। इन दोनों विधियों में फसल के किसी मनचाहे गुण का, किसी पौध में, स्थानान्तरित करना संभव नहीं होता।

कृषि कार्य के लिए ऊतक संवर्धन बहुत ही ज्यादा उपयोगी है। ऊतक स्थानान्तरण द्वारा पौधों में वांछित गुणों का प्रतिरोपण करके सब्जियों, फलों और फूलों की किस्मों में सुधार किए जा रहे हैं। ऊतक-संवर्धन की सर्वाधिक विशेषता है कि इसके द्वारा विभिन्न जलवायविक और प्रतिकूल कृषि दशाओं में भी उत्पादन प्रदान करने वाली पादप प्रजातियों का विकास किया जा सकता है।

आविष पौधों में रोग उत्पन्न करने वाले कुछ कारक (टाक्सिन) उत्पन्न करते हैं। इससे पादप कोशिकाएँ मर जाती हैं। ऊतक संवर्धो की कोशिकाओं को इन आविषों की उपस्थिति में संवर्धित करने पर केवल आविषरोधी कोशिकाएँ ही जीवित रहती है व

विभाजित होती है। इन आविषरोधी कोशिकाओं से पुनजर्नित पौधे संबद्ध रोगजनक कारकों के लिए भी रोधी होते हैं। इस तरह के रोगरोधी पौधों का पुनः जनन तम्बाकू में स्यूडोमोनास टवैकी की रोधिता के लिए एवं मक्के में हेल्मिंथोस्पोरियम पर्णशीर्णता की रोधिता के लिए किया गया है।

अनेक फसलों के ऊतक संवर्धों से लवण सहिष्णु कोशिकाओं का विलगन किया गया है। कुछ फसलों में इन कोशिकाओं से पुनर्जनित पौधे भी लवण सहिष्णु होते हैं। अतः आशा की जाती है कि फसलों की लवण सहिष्णु किस्मों के विकास के लिए ऊतक संवर्ध में लवण सहिष्णु कोशिकाओं का वरण काफी उपयोगी होगा। लवण सहिष्णुता के वरण के लिए ऊतक संवर्धों को उच्च लवण युक्त वाले पोषक पदार्थों पर उगाया जाता है। इसी प्रकार जलाक्रांति सहिष्णु और अधिक जैवरसायन विशेष उत्पन्न करने वाले उत्परिवर्तियों के विलगमन के प्रयास भी किए जा रहे हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला पूणे, इण्डो अमेरिकन हाईब्रिड कम्पनी, हिन्दुस्तान लीवर, बंगलूर आदि संस्थानों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किए हैं। केरल में एर्नाकुलम में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की नारियल अनुसंधान शाला के वैज्ञानिकों ने नारियल के ऊतक संवर्धन यूनिटें आरंभ करके क्रांतिकारी पहल की है। गुवाहाटी विश्वविद्यालय असम में अनन्नास को परखनली में उगाने की विधि विकसित की गई है। राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, पुणे में बाँस के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। बाँस की तीन प्रजातियों में पादप ऊतक संवर्धन तकनीक द्वारा समय से पूर्व

2884HRD—6B

पुष्पित कराने में सफलता मिली है। नई विकसित प्रजातियाँ हैं : **डेण्डोकलमस स्ट्रिक्टस, बम्बूसा अरूण्डिनोसिया** और **डेण्ड्रोकलमस ब्रेनडिसी।**

क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, तिरुवनंतपुरम् द्वारा फेरोमोन विकसित किए गए है। इससे काजू, इलायची, काफी, अदरक, हल्दी आदि पौधों को कीटाणुओं से संरक्षित किया जाता है। शकरकंद के घुन के लिए फोरोमोन का विकास किया गया है। इसका क्षेत्र परीक्षण सी.टी.सी.आई. के विशेषज्ञों की सहायता से सफलतापूर्वक किया गया है। क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, जम्मू द्वारा परम्परागत क्षेत्रों में किशोर (जूविनाइल) हारमोनों का उपयोग करके रेशम की उत्पादकता बढ़ाने हेतु एक कार्यक्रम शुरू किया गया है। इस हार्मोन का उपयोग करने से रेशम के उत्पादन में 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। पुणे की राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला तथा नई दिल्ली स्थित टाटा ऊर्जा अनुसंधान संस्थान के ऊतक संवर्धन केन्द्रों में श्रेष्ठ किस्म के वन वृक्षों का विकास हो रहा है। ऊतक संवर्धन तकनीक के माध्यम से 14 राष्ट्रीय महत्व के वृक्षों के विकास की पद्धतियों का मानकीकरण किया गया है। इसी मानकीकरण के आधार पर व्यापक स्तर पर उत्पादन किया जाएगा। आर्थिक महत्व की बागवानी और वृक्षों की फसलों पर अनुसंधान और विकास कार्य शुरू किए गए हैं।

परखनली में पौध उगाने की ऊतक संवर्धन की तकनीक को तो निजी उद्योगियों ने भी प्रारंभ कर दिया है। ऐसी पहली कंपनी कोचीन की ए.वी. थामस थी जिसने केले और इलायची के रोगमुक्त परखनली पौधे बनाकर उसे देश-विदेश में बेचना शुरू किया था।

फिर बंगलूर की इंडो-अमेरिकन हाइब्रिड कम्पनी ने बड़े पैमाने पर वृद्धि कक्ष और ग्रीन हाउस बनाकर परखनली पौधे तैयार करने का कार्य शुरू किया।

स्पिक एग्रो बायोटेक सेंटर ने चेन्नई में **100 लाख** परखनली पौधे प्रतिवर्ष तैयार करने की सुविधा विकसित की है। यहाँ काफी, आलू, केला, सूरजमुखी, गुलाब, जरवेरा और आर्किड तथा आम, कटहल, खजूर आदि की पौध परखनली में तैयार की जा रही है।

पादप ऊतक संवर्धन जैवप्रौद्योगिकी का एक अति महत्वपूर्ण अंग है। जैवप्रौद्योगिकी की उपयोगिता औषधि व कृषि क्षेत्र में सिद्ध हो चुकी है। वस्तुतः जैवप्रौद्योगिकी में संरचना विकास के सिद्धांतों का उपयोग ऊतक संवर्धन में किया जाता है। आण्विक जीव विज्ञान का क्षेत्र भी कम लोमहर्षक नहीं है किन्तु इसके लिए काफी धन की आवश्यकता पड़ती है। अमेरिका-जैसे विकसित देशों ने पराजीनी फसलें उगाकर कीर्तिमान स्थापित किया है। 1991 तक 395 पराजीनी पौधे उगाने के लिए विमोचित किए गए किन्तु इसमें भारत से एक भी पौधा नहीं था। यद्यपि ऊतक संवर्धन के अन्तर्गत, आज भी सूक्ष्म प्रवर्धन (माइक्रोप्रोपेगेशन) व्यवहार्य है, किन्तु अन्य विधियाँ भी महत्वपूर्ण है : जैसे भ्रूण रक्षण (इम्ब्रियो रेस्क्यू), पात्रे परागण (इन विट्रो पॉलिनेशन), पुंजनन (एन्ड्रोजेनेसिस) तथा जायाजनन (गायनोजेनेसिस), विभज्योतक संवर्धन (मेरिस्टेम कल्चर)।

कैलोजिनेसिसि द्वारा पौधों का गुणन ही सूक्ष्म प्रवर्धन है। तम्बाकू, गाजर, नींबू में इस तरह का संवर्धन होता है। किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में आर्किड का सूक्ष्म प्रवर्धन ऊतक संवर्धन का

सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। थाइलैण्ड तथा सिंगापुर में इसका करोड़ों डालर का व्यापार होता है। चूंकि भारत में आर्किड की किस्मों की बहुतायत है अतः यहाँ भी इसकी संभावनाएं हैं। इसके अतिरिक्त अनेक सजावटी पौधों के फूलों तथा पत्तियों को व्यापारिक पैमाने पर उत्पन्न किया जाता है। लखनऊ की ऊतक संवर्धन प्रयोगशाला में ऊतक संवर्धन द्वारा आर्किड क्राइसैंथमम, पेटूनिया, ग्लैडिओलस-जैसे सजावटी पौधों के अलावा अनेक औषधीय पौधों का भी गुणन किया जाता है। इनमें राओवोल्फिया, सर्पेन्टिना, ऐट्रोपा, बेलाडोना, डिटैलिस, डायस्कोरिया आदि शामिल हैं। फ्लोरिबडा की एक कक्षीय कलिका से 25 लाख क्लोनित पौधे तैयार किए जा सकते हैं जबकि घनकंद के टुकड़ों से 8 पौधों से अधिक नहीं प्राप्त किए जा सकते हैं।

ऊतक संवर्धन तकनीक अनेक फलदार वृक्षों के गुणन में भी उपयोगी पाया गया है। लखनऊ की प्रयोगशाला में नींबू पर शोध कार्य हुआ है। यह भारत में अपनी तरह का पहला प्रयास है। इसी तरह वन के पौधों के सूक्ष्म प्रवर्धन में भी सफलता मिली है। इनमें बाँस, डलबर्गिया, लैटीफोलियम आदि मुख्य हैं। देश में वन के विनाश के कारण तेजी से उगने वाले वन के पौधों के उत्पन्न किए जाने की अत्यधिक आवश्यकता है।

भ्रूण संवर्धन, ऊतक संवर्धन का सबसे प्राचीन सम्प्रयोग है। 1925 में लैबेक ने संकरण द्वारा संकर पौधे तैयार की थीं। ट्रिटिकेल की उत्पत्ति **ट्रिटकम डयूरम** और **सीकेल सीरिएल** के मध्य संकरण भ्रूण रक्षण का जीता जागता प्रमाण है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में सरसों तथा लाहा और अनेक

जंगली प्रजातियों को भ्रूण संवर्धन द्वारा मिलाकर महत्वपूर्ण जीन सरसों तथा लाहा में लाई गई। इस तरह के संकरण कपास, दलहनी फसलों तथा औषधीय पौधे में भी किए गए हैं। लखनऊ में नये बीजों से भ्रूण संवर्धन द्वारा **राओवोल्फिया** सर्पेन्टिना की बीज बध्यता को दूर किया गया है।

प्ररोह विभज्योतक संवर्धन (शूट मेरिस्टेम कल्चर) विधि से विषाणुओं तथा अन्य रोगजनक कारकों को दूर किया जा सकता है। इससे आलू की कुछ किस्मों को रोगरहित बनाया जा सकता है। इसी तरह नींबू का उत्पादन भी बढ़ाया जा सकता है।

पुंजनन तथा जायाजनन विधियों से अगुणित पौधे तैयार किए जाते हैं। इनका सर्वाधिक उपयोग उन वृक्षों में किया जाता हैं जिनके पुनर्जनन-चक्र दीर्घकालीन होते हैं। चीन में इस विधि से धान, गेहूँ तथा तम्बाकू की नई किस्में उत्पन्न करने में सफलता मिली है।

इन सब विधियों के अतिरिक्त कायिक संकरण (सोमेटिक हाइब्रिडाइजेशन) से सरसों, मक्का व तम्बाकू के रोग प्रतिरोधी पौधे तैयार किए जा सकते हैं। त्रिगुणितों में अधिक शक्ति तथा बीजरहित फल पाए जाते हैं। इन्हें भ्रूणपोष संवर्धन (एण्डोस्पर्म कल्चर) द्वारा तैयार किया जाता है। भविष्य में "जीन बैंक" स्थापित करने के लिए संरक्षण हेतु संवर्धन का प्रयोग होगा। स्ट्राबेरी तथा मटर के साथ ऐसे प्रयोग हुए हैं।

औषधियों के उत्पादन में ऊतक संवर्धन का व्यापारिक महत्व है जो जापान में बहुत प्रचलित है। इस तकनीक में वनस्पति रंजक शिकोनिन का (जिसका उपयोग होठ की लाली तैयार

करने में होता है।) व्यापारिक उत्पादन हो रहा है। इस तरह अर्बुदरोधी यौगिक, टैक्साल का उत्पादन कोशिका संवर्धन से किया जा रहा है। लखनऊ में एल्कैलायड, स्टीराइड तथा सुगंधित तेल का उत्पादन पादप ऊतक संवर्धन विधि द्वारा किया जा रहा है।

भारत में ऊतक संवर्धन तकनीक का व्यापारीकरण 1987 से कोचीन की एक कम्पनी ने शुरू किया था। उसने इलायची तथा ऑर्किडों का ऊतक संवर्धन किया था। प्रायः व्यापारिक ऊतक संवर्धन का अर्थ शोभाकारी पौधों के सूक्ष्म प्रवर्धन से लिया जाता है। धन कमाने की दृष्टि से यह ठीक है किन्तु यदि पृथ्वी के हरित आवरण को फिर से ठीक ढंग से स्थापित करना है तो अन्य पौधों को वरीयता देनी चाहिए। सम्प्रति ऊतक संवर्धन तकनीक से 5000 लाख पौधे ही उत्पन्न किये जा रहे हैं। जबकि विश्वभर में 2 अरब से अधिक पौधों की आवश्यकता होगी। अभी 100 से कुछ अधिक ऐसी कम्पनियाँ हैं जो दस लाख पौधे तैयार कर सकती हैं इनमें से भारत में अभी केवल 6 कम्पनियाँ ही हैं। इस समय व्यापारिक ऊतक संवर्धन में मुख्यतः नीदरलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, इजरायल, फ्रांस, जर्मनी, कोलम्बिया प्रमुख हैं।

अध्याय - 14

जैवउर्वरक और जैवकीटनाशी

उर्वरकों के उपयोग के संदर्भ में भारत विश्व का चौथा देश बन गया है। रासायनिक उर्वरकों की सहायता से यद्यपि हम कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि कर सके हैं किन्तु रासायनिक उर्वरक महंगे होने के साथ-साथ भूमि की उर्वराशक्ति को कम करके पर्यावरण को प्रदूषित करने का कार्य करते हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि हम कुछ ऐसे उर्वरक का प्रयोग करें जिससे इन हानिकारक प्रभावों से बचा जा सके। जैवउर्वरक ऐसे ही उर्वरक हैं।

वायुमण्डल में 79 प्रतिशत नाइट्रोजन गैस अक्रिय अवस्था में विद्यमान है। जीवाणु (**राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम बेसिलस स्यूडोमोनास, साइनोजीवाणु, माइक्रोवाइरस थायोबैसिलस, माइक्रोबैक्टीरिया**), **एजोला, नील हरित शैवाल, माइकोराइजा** आदि इस गैस का स्थिरीकरण कर मृदा व पौधों को पोषण प्रदान करती हैं। और इसकी उत्पादकता में वृद्धि करती हैं। ऐसे सूक्ष्मजीवों को जैव-उर्वरक कहते हैं। ये पौधों के लिए समन्वय आपूर्ति प्रणाली के अन्तर्गत सस्ते एवं सार्थक विकल्प हैं।

उर्वरकों के रूप में रसायनों के स्थान पर जीवों पर आधारित पदार्थों का उपयोग जैवप्रौद्योगिकी के कृषि में उपयोगों के अन्तर्गत बहुत महत्व रखता है। जैव उर्वरक वास्तव में ऐसे सूक्ष्म जीव, जीवाणु, फर्न, शैवाल फफूँदी आदि हैं जो खेत में विभिन्न पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस और सल्फर आदि को वातावरण से प्राप्त करके फसलों को उपलब्ध कराते हैं।

रासायनिक उर्वरकों के ज्यादा उपयोग से जमीन की उर्वरा शक्ति पर प्रभाव पड़ता है- अतः फसलों की नाइट्रोजन आवश्यकता की पूर्ति के लिए पूर्ण रूप से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर रहना तर्कसंगत नहीं होता इसलिए जैव उर्वरकों का प्रयोग महत्वपूर्ण है।

जैव उर्वरकों को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जाता है :

(1) नाइट्रोजनयुक्त जैवउर्वरक

(2) फास्फोरसयुक्त जैवउर्वरक

(3) सल्फरयुक्त जैवउर्वरक

जैवउर्वरकों के प्रकार

नाइट्रोजनेयुक्त जैवउर्वरक	फास्फोरसयुक्त जैवउर्वरक	सल्फर युक्त जैवउर्वरक
(1) राइजोबियम- दलहन जैसे : अरहर, मूँग, उड़द, मटर, लोबिया, सोयाबीन, राजमा आदि	**(1) बैसिलस सूडो-मोनास**	**(1) थायोबेसिलस**

(2) एजोटोबैक्टर- अनाज जैसेः गेहूँ जौ, ज्वार, बाजरा

(2) माइक्रो वायल फफूँदी- सभी फसलों में प्रयुक्त होते हैं

तिलहन जैसेः सूरजमुखी, सरसों, **सब्जियाँ** जैसेः आलू, प्याज गोभी बैंगन आदि **वानिकी** जैसे. यूकेलिप्टस, **बागवनी** जैसेः केला, पपीता, अमरूद आदि- **अन्य-** गन्ना, कपास, तम्बाकू आदि

(3) नील हरित शैवाल-
धान (जलमग्न)

(4) एजोस्पाइरिलम-
गेहूँ, बाजरा, धान, राई, ज्वार, सूरजमुखी, गन्ना, कपास, आलू, जूट, तम्बाकू, केला, अंगूर, तरबूज आदि।

नाइट्रोजन के जैविक संश्लेषण में विभिन्न सूक्ष्मजीव भाग लेते हैं। कुछ सूक्ष्मजीव पौधों में सहजीवन यापन करते हुए नाइट्रोजन को कार्बनिक रूप से संश्लेषित करते हैं जो पौधों द्वारा, खनिज लवणों के अवशोषण के बाद ग्रहण कर ली जाती हैं। नाइट्रोजन जैवउर्वरक में सर्वप्रथम स्थान राइजोबियम का आता है। **राइजोबियम** सिर्फ दलहनों में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पाता है। **राइजोबियम** के बाद **एजोटोबैक्टर, एजोस्पारीलम,** नील हरित शैवाल और

एजोला का स्थान आता है। **राइजोबियम** सूक्ष्म जीवाणु हैं जो पौधों की जड़ों में गाँठ बनाते हैं और वायु से नाइट्रोजन ग्रहण कर उसे भूमि में स्थिरीकृत करते हैं। **राइजोबियम** कल्चर का बीज शोधन करने से दलहनी फसल के उत्पादन में 10 से 15 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है अन्य फसलों की उपज में 10-20 प्रतिशत की वृद्धि होती है। उत्तम किस्म के राइजोबियम जैव उर्वरक के उपयोग से सोयाबीन के फसल की उपज लगभग दोगुनी हो जाती है। यह भूमि में 20 से 40 किलोग्राम नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता है। **राइजोबियम** का एक पैकेट (250 ग्राम) एक एकड़ भूमि के लिए पर्याप्त होता है।

प्रभावी **राइजोबियम** जैवउर्वरक से दलहनी फसलों की नाइट्रोजन की 80-90 प्रतिशत आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है।

राइजोबियम की निम्न प्रजातियाँ

प्रसंकर निवेशित समूह	राइजोबियम प्रजातियों का वर्गीकरण	विभिन्न दलहनी फसलें
1 मेडी समूह	**राइजोबियम मेलीलोटी**	लूर्सन (अल्फाल्फा) मेथी
2. क्लोवर समूह	**राइजोबियम ट्राईफोलि**	बरसीम, बम मेथी
3. सेम समूह	**राइजोबियम फेजियोलि**	सेम, राजमा
4. मटर समूह	**राइजोबियम लेग्युमिनीसेरम**	मटर, मसूर, खेसारी
5. ल्यूपिन समूह	**राइजोबियम ल्यूपिनी**	ल्यूपिन

6. सोयाबीन समूह	**राइजोबियम जोपोनिकम**	सोयाबीन, जंगली-सोयाबीन
7. काउपी समूह	**राइजोबियम काउपी**	मूँग, मूँगफली, अरहर, उरद, सनई, काबूली चना इत्यादि।

राइजोबियम प्रजातियों का नया वर्गीकरण :

राइजोबियम प्रजातियाँ	दलहन प्रजातियाँ
1. **राइजोबियम लेग्युमिनीसेरम**	विसीया समूह, ट्राईफोलिस समूह, फेलियोलत
2. **राइजोबियम मेलीलोटी**	मैंडिकागो समूह
3. **राइजोबियम लोटी**	लोट्स समूह
4. **राइजोबियम फाइडी**	ग्लाइसीन (सोयाबीन)
(ए) **ब्रेडी राइजोबियम जोपोनिकम**	ग्लाइसीन (सोयाबीन)
(बी) **ब्रेडी राइजोबियम प्रजातियाँ**	चना, अरहर, मूँग आदि

विभिन्न फसलों में राइजोबियम जीवाणु द्वारा सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण द्वारा प्राप्त नाइट्रोजन की मात्राः

फसलों के नाम	यौगिकीकृत नाइट्रोजन की मात्रा (किग्रा./हे.)	औसत उपज वृद्धि (प्रतिशत)
अल्फा-अल्फा (लूर्सन)	100-200	19.0
अरहर	168-200	20.0
बरसीम	100-150	30.0
चना	85-110	-
लोबिया	80-85	25.0
मूँगफली	50-60	19.0
मसूर	90-100	32.0
उड़द/मूँग	50-55	20.0
मटर	52-77	13.0
सोयाबीन	60-80	35.0

नील-हरित-शैवाल एक प्रकार की काई है। यह नीले-हरे रंग की होती है, जो वायुमंडल में उपलब्ध लगभग 78 प्रतिशत नाइट्रोजन को जैविक नाइट्रोजन यौगिकीकरण द्वारा अमोनिया में बदल देने की क्षमता रखती है। इस कार्य हेतु ऊर्जा, सूर्य के प्रकाश व एडिनोसिन ड्राईफास्फेट के एडिनोसिन डाइ-फास्फेट में परिवर्तन द्वारा उत्सर्जित **फॉस्फेट** लोहा से प्राप्त होती है। इसलिए नील हरित शैवाल वायुमंडील नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कर लगातार धान (जलमग्न) की फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध कराता है।

नील हरित शैवाल एक प्रकृति प्रदत्त शैवाल है। इसको जीवाणुओं से अधिक समानता के कारण इसे साइनोजीवाणु भी कहते हैं। इसका लगभग 40 प्रजातियों में नाइट्रोजन यौगिकीकरण का गुण होता है। इनमें एनाबिना, नास्टॉक, साइटोनिया, आलोसाइरिया प्रमुख हैं। नील हरित शैवाल जैव उर्वरक की 12.5 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर का प्रयोग धान की रोपाई के 5-6 दिन बाद स्थिर पानी में करना चाहिए। शैवालीकरण के 4-5 दिन बाद भी पानी खेत में लगा रहना आवश्यक है। इससे फसल को 25-30 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाती है। इसके प्रयोग से 12-13 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक धान की अच्छी उपज भी प्राप्त हो जाती है। नीत हरित-शैवाल नाइट्रोजन यौगिकीकरण के साथ-साथ सूर्य की ऊर्जा से वायुमण्डलीय कार्बन डाइ ऑक्साइड को शर्करा में भी परिवर्तित कर देता है।

एजोला तीव्र गति से विकसित होने वाले फर्न की एक प्रजाति है जो पानी में तैरती रहती है। इसकी पत्तियों की गुहाओं में **'एनाबिना एजोली'** नामक **साइनोजीवाणु** निवास करता है, यह वायुमण्डल से नाइट्रोजन लेकर पोषक पदार्थों का निर्माण करता है। **एजोला** 40-60 किग्रा. प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन का योगिकीकरणकरण करता है।

एजोटोबैक्टर जीवाणु की खोज 1901 में **'बीजरिंग'** ने की थी तथा **एजोस्पाइरिलम** जीवाणु की खोज 1922 में हालैण्ड के सूक्ष्मजीव वैज्ञानिक ने की थी और 1978 में इसका नाम **एजोस्पाइरिलम** रखा गया। **एजोस्पाइरिलम** बाजरे, पर्लमिलिट व मक्का आदि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है। **एजोटोबैक्टर**

गेहूँ, जौ, बाजरा आदि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य करता है।

फास्फोरस घुलनशील सूक्ष्म जीव (पी.सी.बी. फास्फेट सोलुबिलाइजिंग बैक्टीरिया) को जैवप्रौद्योगिकी द्वारा विकसित करने के लिए आनुवंशिक विधियों से जैव उर्वरकों की क्षमता बढ़ाई जा सकती हैं। बागवानी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण कारकों, जैसे- **राइजोबियम, एजोस्पाइरीलम, एजोटोबैक्टर, एजोला,** कुछ **रसायनों जीवाणु** जैसे **नासटॉक,** तथा **एनाबिना** की जाति द्वारा आपूर्ति की जा सकती है साथ ही फास्फेट घुलनशील जीवाणु **स्यूडोमोनास** और **बैसिलस** तथा **पेनीसीलियम** और **एस्पर्जिलस** द्वारा आपूर्ति होती है। आम, केला, अनार, पपीता तथा नींबू वर्गीय फलों में माइकोराइजा फफूँदी अत्यन्त लाभकारी होती है। इस क्षेत्र में माइकोराइजा फँफूदी के जीन संरचना का पता लगाया जा रहा है जिससे बागवानी फसलें और अधिक खुशहाल हो सकें। इसी प्रकार लीची में एण्डो **माइकोराइजा** द्वारा काफी लाभ पहुँचता है।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र मुम्बई में इस बात पर शोध चल रहा है कि विकिरण का प्रयोग करके दलहन पौधों का कुछ ऐसा रूपान्तरण किया जाए कि यह व्यापक पैमाने पर हवा से मुक्त नाइट्रोजन ग्रहण कर उसे जमीन में संग्रहीत कर सकें। इस क्रम में **'सेस्बोनिया रास्ट्रेटा'** नामक फली वाले पौधे का रूपान्तरण किया गया है इस नये पौधों की न केवल जड़ बल्कि तना में भी ऐसी गाँठ मौजूद है जिसमें **'एजोराइजोबियम कोलिनोडस'** जीवाणु रहता है। यह नया पौधा 50 दिन के भीतर एक हेक्टेयर भूमि में 120 से 160 किलोग्राम नाइट्रोजन का संग्रह कर देता है।

पौधों के पोषक तत्वों में फास्फोरस लवण जल में अघुलनशील होते हैं। अतएव पौधों द्वारा धरती से ग्रहण किए जाए पोषक पदार्थों में आमतौर से वे मौजूद नहीं होते। विभिन्न जीवाणु जैसे- **बैसिलस स्यूडोमोनास, माइक्रोबैक्टीरियम, माइक्रोवायल** कवक अनुपलब्ध फास्फोरस लवणों को घुलनशील एवं गतिशील बनाने में सहायक हैं।

सल्फर जैवउर्वरक में **थायोबैसिलस** नामक जीवाणु मौजूद होता है जो कार्बनिक सल्फर को अकार्बनिक सल्फर के रूप में परिवर्तित कर पौधों को उपलब्ध कराता हैं। नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला **एजोला** खेतों के लिए कार्बनिक पदार्थो को उपलब्ध कराने का एक बढ़िया स्रोत है।

जुलाई 99 में टाटा ऊर्जा शोध संस्थान नई दिल्ली के वैज्ञानिकों ने एक ऐसी जैव खाद जिसे वैज्ञानिक भाषा में **माइकोराइजा** कहते हैं का विकास किया है जो कई प्रकार की सब्जियों, फलों, चारों की फसलों, के उत्पादन बढ़ाने में सक्षम होगा। अनुमान के अनुसार उत्पादकता की यह दर 30 से 50 प्रतिशत तक हो सकती है। **माइकोराइजा** वस्तुतः कवकों का मिश्रण होता है जो स्वयं को पौधों की जड़ों से सम्बन्धित रखकर उनसे एक तरह का सहजीवी सम्बन्ध बना लेता है। वह वायुमण्डल से नाइट्रोजन लेकर उसे पौधों के लिए उपयोगी बनाने का काम लेता हैं। साथ ही यह फास्फोरस को अवशोषित करने में सहायक होता हैं। ध्यान रहे कि ये दोनों ही पदार्थ नाइट्रोजन फास्फोरस क्रमशः वायुमण्डल तथा मिट्टी में मौजूद तो रहते हैं, लेकिन इन्हें पौधे प्रत्यक्ष रूप से लेने में समर्थ नहीं होते। लेकिन **माइकोराइजा** इन पदार्थों को ग्रहण

कर उन्हें पौधों को स्थानान्तरित कर देते है। टाटा ऊर्जा शोध संस्थान के वैज्ञानिकों ने इस नये जैव खाद की कई विशेषताओं का उल्लेख किया है। इनका मानना है कि इसकी बहुत कम मात्रा का प्रयोग कर ही उत्पादकता हासिल की जाती है।

इसमें रासायनिक तत्वों की प्रतिशतता काफी कम होती है इस कारण यह वातावरण के अनुकूल ही बना रहता है तथा इससे प्रदूषण की सम्भावना की कम होती है। यह मिट्टी की क्षमता, उसकी उर्वरता तथा पौधों की जड़ों द्वारा मिट्टी को पकड़ रखने की क्षमता में विशेष रूप से सहायक होती है। यह कई प्रकार के सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर पौधों को विभिन्न प्रकार के व्याधियों से बचाने का कार्य करती है। यद्यपि ये कवक वातावरण में मौजूद होते हैं किन्तु इन्हें जैविक खाद का रूप नहीं दिया जाए तो ये पौधों के लिए उपयोगी नहीं बन पाते हैं।

सन् 1995 में बायोवेद शोध एवं प्रसार केंद्र, इलाहाबाद के वैज्ञानिकों ने एक ऐसे जैवउर्वरक और जैवकीटनाशी **बायोनीमा** का उत्पादन किया है जो विभिन्न फसलों के लिए आर्थिक दृष्टि से उपयोगी तथा प्रदूषण रहित है इसका प्रयोग एक एकड़ के लिए 15 किलोग्राम होता है। इसके प्रयोग से भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ जाती है तथा पैदावार में 20-25 प्रतिशत की वृद्धि होती है तथा भूमि की उर्वराशक्ति कई वर्षों तक बनी रहती है। यह हानिकारक कीटों और व्याधियों विशेष रूप से सूत्रकृमियों द्वारा होने वाले रोगों की, रोकथाम करता है।

भारत सरकार ने जैवउर्वरकों को प्रोत्साहित करने के लिए देश के सात राज्यों में राष्ट्रीय परियोजनाएं शुरू की हैं। देश के शीर्ष संस्था के रूप में राष्ट्रीय जैवउर्वरक केंद्र की स्थापना गाजियाबाद

में की गई है। जैवउर्वरक के महत्व को ध्यान में रखते हुए इसके उपयोग को बढ़ावा देने, इसकी उपलब्धता सुनिश्चित करना ही इस परियोजना का उद्देश्य था। इसके अलावा पूरे देश में 6 क्षेत्रीय जैवउर्वरक विकास केंद्र क्रमशः जबलपुर, नागपुर, हिसार, बंगलूर, इम्फाल व भुवनेश्वर में स्थापित किए गए हैं। राष्ट्रीय जैवउर्वरक विकास परियोजना का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है :

1. जैवउर्वरक के सक्षम उपयोग पर प्रदर्शन तथा प्रशिक्षण का आयोजन करना।
2. गुणवत्ता, जाँच, नियंत्रण का कार्य करना।
3. जैवउर्वरक से सम्बन्धित साहित्य को विभिन्न क्षेत्रीय भाषा करना।
4. संवर्धन बैंक की स्थापना करना।
5. उच्च कोटि के **राइजोबियम, एजोटोबैक्टर** व **एजोस्पाइरियम** संवर्धन तथा नील-हरित शैवाल के उपयोग द्वारा रासायनिक उर्वरकों की कमी की पूर्ति को सुधारने हेतु जैवउर्वरकों का उत्पादन व वितरण करना।
6. सरकारी संस्थाओं के साथ-साथ अन्य संस्थाएं जो कि जैवउर्वरकों के उत्पादन व वितरण कार्यो से जुड़ी है को जैवउर्वरक से सम्बन्धित तकनीकी सहायता प्रदान करना।

राष्ट्रीय जैवउर्वरक कार्यक्रम के अन्तर्गत कृषि निदेशालय, सार्वजनिक क्षेत्र के कई उपक्रम राज्य के कृषि विश्वविद्यालय, राज्य के कृषि विभाग और कई निजी क्षेत्र उपक्रम **राइजोबियम**

टीकों, निवेशक (इनाकुलेन्ट) के उत्पादन एवं वितरण में कार्यरत हैं। अखिल भारतीय एकीकृत अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत सोयाबीन, मूँगफली अन्य दलहनी फसलों को ध्यान में रखकर नाइट्रोजन स्थिरीकरण परियोजना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा प्रायोजित है इसके अथक प्रयासों के बाद कई उपयुक्त विभेद पहचाने गए हैं। इनका उपयोग विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों, विभिन्न प्रजातियों एवं फली वाली फसलों के लिए किया जाता है।

जैवकीटनाशी तथा जैवरोगनाशी

रासायनिक रोगनाशियों व कीटनाशियों के प्रयोग से पर्यावरण तो प्रदूषित होता ही है, मानव सहित, विभिन्न प्रकार के जीवों पर भी इनके प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं साथ ही साथ भूमि की उर्वराशक्ति पर भी इनके प्रभाव पड़ते हैं। कीटों एवं बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए एक कार्यक्रम की शुरुवात 1988 में की गई। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत देश भर में अनुसंधान एवं विकास हेतु 10 उपपरियोजनाओं की शुरुआत की गई जो गन्ने, कपास, मूँग, मसूर, तिलहन एवं सब्जियों में कीटों, परजीवियों एवं बीमारियों के नियंत्रण की ओर उन्मुक्त थीं। जैव कीटनाशी का मुख्य जीवाणु **बैसिलस थूरिजेन्सिस** है। बैसिलस थूरिजेन्सिस एक सामान्य भूमि जीवाणु है, जिसे सर्वप्रथम जर्मनी के थूरिंजिया क्षेत्र से पृथक किया गया। भारत में इसका उपयोग 1991 तक प्रतिबंधित था किन्तु अब राष्ट्रीय पादप जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान केंद्र, नई दिल्ली इसके विकास की दिशा में अग्रसर है। शिमला स्थित केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने आलू के कंद-मोथ के प्रतिरोध के लिए 'बी.टी. आविष' वाले पराजीनी आलू का विकास किया है।

इसकी वजह से प्रति हेक्टेयर आलू की पैदावार 8-10 प्रतिशत बढ़ी है, भारतीय उद्यान संस्थान, बेंगलूर के वैज्ञानिकों ने बीजाणु रहित उत्प्रेरक का विकास किया है जो रासायनिक कीटनाशी विष पत्तागोभी के **डायमण्ड पीठ मोथ** के प्रतिरोधी पाया गया है, इस प्रकार विभिन्न फसलों के लिए बी.टी. के विभिन्न प्रकार व्यावसायिक यौगिक उपलब्ध हैं जिन्हें किसान प्रयोग कर अपनी बागवानी में चार चाँद लगा सकते हैं। पौधों की रक्षा के लिए वैकल्पिक उपायों में वैज्ञानिकों ने प्राकृतिक उत्पाद जो हानिकारक कीटों एवं व्याधियों के खिलाफ प्रयोग में लाए जाते हैं, इसके साथ-साथ जीवित कारक, जैसे जीवाणु, विषाणु, फफूंदी, प्रोटोज़ोआ, परभक्षी, सूत्रकृमि इत्यादि द्वारा कीटों और व्याधियों का नियंत्रण किया जाता है।

ये सभी वातावरण से मित्रवत व्यवहार करते हैं तथा प्रदूषण को नियंत्रित रखते हैं। ऐसे कीटनाशियों को इकोफ्रेण्डली कीटनाशी कहते हैं। नीचे विभिन्न प्रकार के कीटनाशियों व कीट नियंत्रण विधियों का उल्लेख किया जा रहा है जिसे हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जैविक नियंत्रण की श्रेणी में रखते हैं-

(1) वानस्पतिक और कार्बनिक कीटनाशी

पौधे के अवशेष, पौधों से प्राप्त होने वाले रस एवं तेल विभिन्न प्रकार की खलियाँ (जैसे नीम, अलसी, सरसों, महुआ की खली) वानस्पतिक मूल के संभाव्य जैव-कीटनाशी स्रोत हैं नीम के विषाक्त, रसायन जैसे ऐजाडिरैक्टिन, निम्बिन, सालनिन, मेलिआंड्रियोल सूत्रकृमि, हेयरी कैटर्पिलर, तना भेदक, फली भेदक, जैस्सिड्स, एफिड, भृंग, मीली बग, सफेद मक्खियों, प्लाट हार्पस, फल मक्खियों, मच्छर, टिड्डियों और भंडारित अनाजों के कीटों और कुछ व्याधियों

के रोकथाम के लिए बहुत लाभकारी होते हैं। इनके प्रयोग से हानिकारक कीटों तथा व्याधियों की रोकथाम के साथ-साथ भूमि की उर्वरा शक्ति भी कई वर्ष तक बनी रहती है। भूमि में पाये जाने वाले लाभदायक जीवाणु (जैसे- **राइजोबियम, एजोटोबैक्टर**) की संख्या में भी वृद्धि होती है। प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि नीम उत्पाद से उपचारित पौधों में चना फली बेधक अण्डे कम देता है तथा उपचारित पौधों को इसकी सुंडियाँ या तो खाती नहीं या खा लेने पर उनकी शारीरिक कार्यिकी बाधित हो जाती है। पर्यावरण के अनुकूल नीम की ये विशेषताएं 'एकीकृत कीट प्रबन्धन', (चित्र संख्या -1 जयराज एवं अन्य 1993) के लिए उपयुक्त हैं।

इसके अतिरिक्त गुलदाउदी, लैंटाना, तुलसी, बैटिवर, हल्दी, सौंफ, मैथी, कालीमिर्च, ड्रम स्टिक, तम्बाकू, छोटा चकोतरा, लेमनग्रास, कैसिआ, धतूरा, जलकुम्भी तथा गेंदा के प्रयोग से पौधों के परजीवी सूत्रकृमियों (निमाटोड), हानिकारक कीटों और विभिन्न व्याधियों की रोकथाम के लिए उपयुक्त पाए गए हैं।

(2) सूक्ष्मकीटनाशी व जैवकीटनाशी

कृषि में **पेनीसीलियम, यीस्ट, ऐस्पर्जिलस** कवकों का अभी विशेष महत्व ज्ञात नहीं हुआ है लेकिन वे मानव चिकित्सा, पोषण एवं पादप रोगों (जो जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं) के लिए बहुत महत्व पूर्ण होते है। कृषि के क्षेत्र में मुख्यतः **'स्ट्रेप्टोमाइसीन'**, **'टेट्रासाइक्लीन'** एवं **'क्लोरामफेनिकॉल'** की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। **'बेवेरिया बैजियाना'** एवं **'मेटाराइजिम एनाइसोपिली'** नामक फफूंदों से 'डेप्सीपेटाइड' नामक विष पैदा होता है जो कीटों की कोशिका के अन्दर पाए जाने वाले माइटोकॉन्ड्रिया एवं

इन्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम में प्रवेश करके उनकी ऊर्जा उत्पादन क्षमता को नष्ट कर देता है। **'एस्पर्जिलस'** नामक फफूंद से भी 'एफ्लाटॉक्सिन' उत्पाद निकलता है। यह कीट के आनुवंशिक पदार्थ को नष्ट कर बंध्यता पैदा कर देता है।

जैवकीटनाशी (बायोपेस्टीसाइड्स) का अभिप्राय है जीवित कारकों जैसे कवक, जीवाणु, विषाणु, परभक्षी, परजीवी (सूत्रकृमि), प्रोटोज़ोआ द्वारा हानिकारक कीटों एवं पादप व्याधियों का नियंत्रिण करना।

नये अनुसंधान द्वारा कवक, **ट्राइकोडर्मा,** की विभिन्न प्रजातियों द्वारा कई रोगों का नियंत्रण किया जा रहा है। जैसे-मूल ग्रन्थि, पादप म्लानि, जड़-गलन व्याधि इत्यादि। इसके अलावा पादप-परजीवी-सूत्रकृमि जो पौधों के लिए हानिकारक है उसकी रोकथाम के लिंए विभिन्न प्रकार के कवक, जैसे- **पेसिलोमाइसीज, वर्टीसीलियम, फ्यूज़ेरियम, एस्पर्जिलस, ग्लिओक्लेडियम, कैटिनेरिया** आदि का प्रयोग जैवकीटनाशी के रूप में किया जा रहा है।

कुछ जीवाणु जो विभिन्न प्रकार के हानिकारक कीटों व पादप व्याधियों की रोकथाम के लिए उपयोग में लाए जा रहे हैं, इनमें **'बेसिलस'** एवं **'स्यूडोमानॉस'** प्रजातियों के जीवाणु मुख्य हैं। इनका विभिन्न प्रकार के पादप-परजीवी सूत्रकृमि, लेपिडोप्टेरा एवं कोलियोप्टेरा वर्ग के कीटों के विरूद्ध सफल प्रयोग किया गया है। इन जीवाणुओं को विभिन्न प्रकार के पैकिंग में बन्द कर बाजार में बेचा जा रहा है जैसे 'बक्थेन', 'बायोसुपर', 'एल-69', 'पैरास्पोरिन', 'थ्यूरीसाइड', 'स्पोरीन', एवं डाइपेल। ये जीवाणु कीट विशेष को ही नुकसान पहुँचाने के कारण लोकप्रिय हो रहे हैं।

नींबू के स्केल कीट का 'बैडेलिया भृंग' द्वारा, चना फली बेधक का **'कैमपोलेटिस क्लोरीडी'** एवं **'ट्राइकोग्रामा फैसिएटम'** द्वारा गन्ना तना छेदक का **'ट्राइकोग्रामा फैसिएटम'** नियंत्रण किया जाता है। **'ट्राइकोडर्मा हारजेनियम'** और **'ग्लायोडैडियम वायरेन्स'** से काली मिर्च में लगने वाले **'फाइटोफ्थोरा कैपसिसी'** का संक्रमण रोका जा सकता है।

लेपिडोप्टैरा वर्ग के कीटों पर विषाणुओं का भी काफी बड़े पैमाने पर प्रयोग हो रहा है, उदाहरणस्वरूप, एन.पी.वी. (न्यूक्लीयर पॉलीहाड्रोसिस विषाणु), ग्रैनुलोसिस विषाणु एवं कोशिका द्रवीय विषाणु।

इस क्षेत्र में विस्तृत शोध कार्य चल रहा है तथा भविष्य में इससे काफी आशाएं हैं। कभी-कभी जैव कीटनाशी के साथ कार्बनिक खाद व जैव उर्वरक का प्रयोग काफी लाभदायक होता है, जैसे- पादप सूत्रकृमि के नियंत्रण के लिए **ट्राइकोडर्मा** के साथ नीम की खली का प्रयोग लाभदायक होता है। इसके अलावा सक्रिय कवक एवं जीवाणुरूपी जैवकीटनाशी को थोड़ी मात्रा में सूत्रकृमिनाशी या कार्बनिक खाद के साथ प्रयोग करने से पादप परजीवी सूत्रकृमि की संख्या कम हो जाती है। जैव कीटनाशियों के बड़े पैमाने पर उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बतूर एवं मदुरै कामराज विश्वविद्यालय में दो जैव नियंत्रण प्रायोगिक संयत्र लगाए गए हैं। जिनका उद्देश्य पर्याप्त मात्रा में जैव कीटनाशियों का विकास करना है जिससे अरहर, मूँगफली, सूरजमुखी, कपास, उड़द, मूँग, अरण्डी आदि की आवश्यकता पूरी की जा सकें। यह एक सरल, सस्ता और पर्यावरण प्रदूषणरहित अच्छा माध्यम है।

अभी तक जैवनियंत्रण के लिए मुख्य रूप से **ट्राइकोडर्मा** तथा ग्लिओक्लैडियम- जैसी फफूंदों पर निर्भर रहना पड़ता था। पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने पाया है कि **'स्यूडोमोनास फ्लोरिसेस'** नामक जीवाणु जैव नियंत्रण में ज्यादा कारगर है।

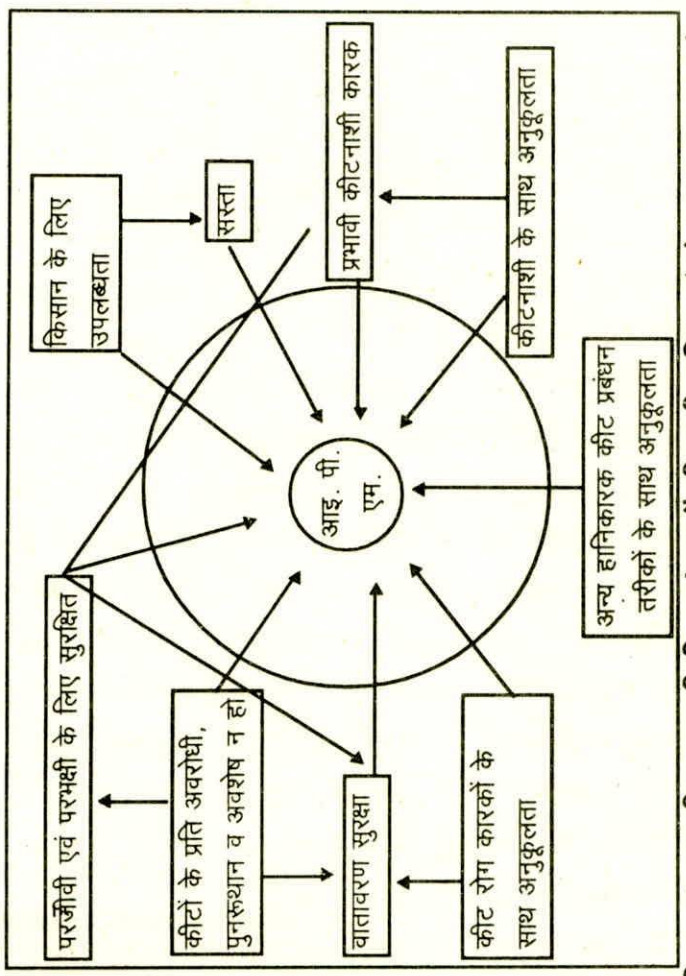

चित्र - 1 : एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन में नीम की भूमिका (स्त्रोत : जयराज एवं अन्य 1993)

बीज शोधन के साथ इन जीवाणुओं को मिट्टी में पहुँचा दिया जाता है।

औद्योगिक स्तर पर रासायनिक उर्वरकों का संश्लेषण जीवाश्म ईंधनों व रसायनों की प्राप्ति पर निर्भर करता है जबकि जैव कीटनाशी व जैव उर्वरकों को स्थानीय स्तर पर बनाया जा सकता है साथ ही उन पर आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है। जैव उर्वरक धरती की उर्वराशक्ति को प्राकृतिक रूप से समृद्ध बनाते हैं।

जैव उर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी को निरन्तर अच्छी दशा में बनाये रखा जा सकता है और फसलों की उत्पादकता में निरन्तर वांछित वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। प्रदूषण नियंत्रण निर्विवाद रूप में अगली सदी में बहुत चुनौती होगी। अभी प्रदूषण से होती आर्थिक क्षति के पहलू को नजरअंदाज किया जाता है, ऐसी स्थिति में जैव उर्वरक व जैव कीटनाशी प्रदूषण को कम करने में काफी सहायक हैं। और इनके प्रयोग से फसलों की अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

अध्याय - 15

मानव संजीन परियोजना

हर व्यक्ति की संरचना, उसकी आंखों का रंग, कोई जन्म जात रोग, उसके बाल आदि उसके जीनों पर निर्भर करते हैं। इन जीनों के समूह को संजीन (जीनोम) कहते हैं। प्रत्येक जीव के उसके सभी आनुवंशिक गुण उसके माता-पिता से आते हैं। इसके लिए जो पदार्थ संवाहक का कार्य करते हैं उसे जीन कहते हैं। किसी भी व्यक्ति का रंग, रूप, आकार, गुण, दोष आदि को निर्धारित करने वाले जीन ही हैं। इन्हीं जीनों का वैज्ञानिक मानचित्रीकरण जिसके माध्यम से जीनों को उनके आकार, स्वरूप तथा विशिष्टताओं के आधार पर स्पष्ट रूप से जाना जा सके संजीन कहलाता है। किसी भी जीव के संजीन को पूरी तरह से जानने की पहली सफलता 1995 में मिली जब **'फिमोफाइलस एन्फ्लुएन्जी'** नामक जीवाणु के संजीन को को पूरी तरह से पढ़ लिया गया। नवीनतम जानकारी के अनुसार पचास लाख बेस आकार के छोटे संजीन वाले लगभग एक दर्जन जीवाणु के सभी जीन पहचानें जा चुके हैं। खमीर के संजीन का पता लग चुका है। जिसमें एक करोड़ बीस लाख क्षार हैं।

वैज्ञानिकों द्वारा मनुष्य के जीन कूट अर्थात् संजीन को पढ़ने में सफलता प्राप्त कर ली गई है। इस सफलता को मनुष्य द्वारा चांद पर पहुँचाने की उपलब्धि से महत्वपूर्ण माना जा रहा है। वैज्ञानिकों का कहना है यह खोज हमारे जीवन का अंदाज ही बदल देगी। ज्ञातव्य है कि मनुष्य के जीन उसके शारीरिक व मानसिक लक्षणों का निर्धारण करते हैं और ये ही गुणसूत्रों के माध्यम से इन लक्षणों को पीढ़ी दर पीढ़ी ले जाते हैं। अब इसकी वजह से यह पता लगाया जा सकेगा कि हमारे किसी विशेष लक्षण या रोग के लिए कौन-सा जीन जिम्मेदार है और इस प्रकार कई असाध्य रोगों का इलाज भी किया जा सकेगा।

गुणसूत्र, डी.एन.ए. तथा आनुवंशिक कोड

शरीर की मूल इकाई कोशिका है। मानव का शरीर औसतन तीन खरब कोशिकाओं से मिलकर बना होता है। प्रत्येक कोशिका में एक केंद्रक होता है और केंद्रक में गुणसूत्र (क्रोमोसोम्स) पाए जाते हैं। मानव में गुणसूत्र तेइस जोड़ी के रूप में होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या 46 तक होती है। प्रत्येक जोड़ी का एक गुणसूत्र माँ से आता है जबकि दूसरा पिता से आता है। एक से लेकर बाइस (1-22) जोड़ी गुणसूत्र व्यक्ति की विभिन्न विशेषताओं के लिए उत्तरदायी होते हैं जबकि तेइसिवीं (23वीं) जोड़ी का गुणसूत्र व्यक्ति के लिंग का निर्धारण करता है। पुरूषों में 23वीं जोड़ी का गुणसूत्र (xy) के रूप में होता है जबकि महिलाओं में इसका स्वरूप (xx) होता है। ये गुणसूत्र डी.एन.ए. (डी. ऑक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल) के रूप में होता है।

डी.एन.ए. का आकार सीढ़ीनुमा दोहरी कुण्डली के रूप में होता है। सन् 1953 में जेम्स वाटसन और फ्रांसिस क्रिक ने डी.एन.ए. का दुहरी कुण्डली वाला मॉडल प्रस्तुत किया। मॉरिस विलकिन्स ने एक्स-रे विर्वतन पद्यपि से 1953 में डी.एन.ए. का चित्रण किया था। इनकी इस महत्वपूर्ण उपलब्धि के लिए 1962 में वाटसन, क्रिक और मॉसिस विलकन्स को संयुक्त रूप से चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था। डी.एन.ए. का निर्माण शर्करा तथा नाइट्रोजनी क्षारों के अणुओं से होता है। सीढ़ी के बाहरी फीते के रूप में शर्कराएँ होती हैं तथा ये नाइट्रोजनी क्षारों रूप दण्डों से बंधी रहती हैं। नाइट्रोजनी क्षार निम्नलिखित चार प्रकार के होते हैं : (1) एडिनीन (ए) (2) थायमीन (टी) (3) गुआनीन (जी) (4) साइटोसीन (सी)। ये क्षार एक निश्चित नियम के अन्तर्गत ही संयुग्म होते हैं। एडिनीन, थायमीन से जुड़कर 'प्यूरीन' का निर्माण करता है जबकि गुआनीन, साइटोसीन के साथ जुड़कर 'पिरीमिडीन' का निर्माण करता है। यही प्यूरीन व पिरीमिडीन क्रमिक रूप से हाइड्रोजन बंधों के माध्यम से शर्करा के फीतों को सीढ़ी में दण्डे के रूप में जोड़ते हैं। एडिनीन व थाइमीन के बीच हाइड्रोजन के दो बंध और गुआनीन तथा साइटोसीन के बीच हाइड्रोजन के तीन बंध होते हैं जो अत्यंत दुर्बल होते हैं। तब डी.एन.ए. को अपनी प्रतिलिपि बनानी होती है तो सबसे पहले हाइड्रोजन बंध टूट जाते हैं और डी.एन.ए. अकुंडलित होकर दो स्वतंत्र श्रृंखलाओं में बदल जाता है उसके बाद दोनों श्रृंखलायें अपनी-अपनी प्रतिलिपियाँ बना लेती हैं और इस प्रकार एक डी.एन.ए. से दो डी.एन.ए. अणुओं की संरचना हो जाती है। डी.एन.ए. के नाइट्रोजन क्षारों के स्थिर होने का क्रम बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके

व्यवस्थित होने के विभिन्न क्रमों के कारण ही विश्व में विभिन्न प्रकार के जंतु व वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। डी.एन.ए. की सम्पूर्ण संरचना सीढ़ीनुमा प्रतीत होती है। वास्तव में डी.एन.ए. के अणु में न्यूक्लिटाइडों से बनी श्रृंखलाएँ आपस में सर्पिलाकार सीढ़ियों के रूप में गुंथी होती हैं और न्यूक्लिओटाइडों उक्त चारों नाइट्रोजन क्षारों के विभिन्न क्रमों में जुड़े होते हैं। डीं.एन.ए. की दोनों श्रृंखलाओं को ही न्यूक्लियोटाइड कहते हैं। संजीन में मौजूद समस्त निर्देश इन्हीं चार क्षारों की कूट भाषा में लिए होते हैं। इस प्रकार ए.टी.जी.सी. संजीन की किताब की वर्णमाला के अक्षर हैं। इनमें से किन्हीं तीन क्षारों के समूहन से अमीनों अम्ल के लिए विशेष कूटों (कोडो) का निर्माण होता है। अमीनों अम्ल की विशिष्ट प्रकार की प्रोटीनों तथा उसके विविध रूपों जैसे-हार्मोन तथा एन्जाइम आदि के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जीवन पर्यन्त मानव की हर जैविक क्रिया का संचालन करते हैं। इस प्रकार ए.टी.जी.सी. में से तीन समूह जीवन की भाषा है। इसे आनुवंशिक कूट या कोडोन या जीन कहते हैं। मानव शरीर की प्रत्येक कोशिका का डी.एन.ए. 50 हजार से लेकर एक लाख जीनों से मिलकर बना होता है। जबकि इसमें छुपा हुआ सम्पूर्ण आनुवंशिक रहस्य लगभग 3.2 अरब रासायनिक अक्षरों में सिमटा रहता है।

डी.एन.ए. अणु की संरचना

(i) शर्करा (शुगर) - एस

(ii) फास्फेट या (फास्फोरिक अम्ल) पी

(iii) चार नाइट्रोजन क्षारों (नाइट्रोजन बेसेस) से मिलकर बनी होती हैं :

नाइट्रोजन क्षार

प्यूरीन	पिरीमिडीन
(a) एडिनीन (ए)	(a) थायमीन (टी)
(b) गुआनीन (जी)	(b) साइटोसीन (सी)

आनुवंशिक कूट

नाइट्रोजन के चार अक्षर ए, जी, टी और सी ही जीवन की किताब के अक्षर हैं। इनमें से कोई तीन क्षारों का समूह त्रिक होता है। ये 'तीन अक्षर' एक अमीनों अम्ल के लिए विशेष कूट का काम करते हैं। कम से कम 20 विभिन्न अमीनों अम्ल मिलकर एक प्रोटीन का निर्माण करते हैं। प्रोटीन ही हमारे शरीर की हर क्रियाविधि को नियंत्रित करती है। उक्त तीन-तीन अक्षरों का समूह ही जीवन की भाषा है, जिसे आनुवंशिक कूट कहते हैं, जैसे- टी.जी.सी., ए.टी.सी., सी.ए.टी., टी.टी.ए., सी.टी.टी., ए.सी.सी., टी.ए.जी., ए.ए.टी., जी.टी.ए., ए.जी.ए., ए.ए.टी. आदि हैं : यहां

ए = एडिनीन

जी = गुआनीन

टी = थायमीन

सी = साइटोसीन

प्रोटीन का संश्लेषण इन्हीं तीन-तीन अक्षरों के कूट का अनुपालन करते हुए होते हैं। अतः यह कूट अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन अक्षरों की भाषा पढ़ ली जाए तो किसी भी जीवधारी की जीवन कुंडली पढ़ी जा सकती है। मानव संजीन परियोजना की औपचारिक

शुरुआत 1990 में हुई, जबकि परियोजना पर कार्य 1986 के अंत से ही प्रारम्भ हो गया था। चिकित्सा जगत के इतिहास में मानव संजीन परियोजना सर्वाधिक महत्वाकांक्षी, श्रम साध्य एवं खर्चीली परियोजना है।

इस परियोजना के अन्तर्गत किए जाने वाले प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्ष आनुवंशिकता (हेरेडिटी) के रहस्यों की गुत्थी को सुलझाने के साथ-साथ रोगों के स्रोत के संबंध में उपयोगी सूचनाएं प्रदान करेंगे। इस वृहत शोध परियोजना का लक्ष्य मनुष्य की प्रत्येक कोशिका में मौजूद डी.एन.ए. के सही रासायनिक अनुक्रम की जानकारी प्राप्त करना है।

मानव संजीन हमारे जीवन का अभिलेख है। यह एक ऐंठी लड़ी के रूप में हमारे शरीर में मौजूद है। इसमें मानव के निर्माण तथा विकास से संबंधित सारी सूचनाएं समाहित रहती हैं। इस जीवन अभिलेख में किसी प्रकार की अशुद्धि आ जाने पर तरह-तरह के रोग पैदा होते हैं। यह मानव संजीन अनेक गुणसूत्रों का एक ऐसा समुच्चय है, जिनमें मानव के आनुवंशिक गुण समाहित रहते हैं। यही मानव संजीन हमारे शरीर में मौजूद लगभग 60 खरब कोशिकाओं की दैनिक क्रिया प्रणाली को नियंत्रित करता है। साथ ही साथ यह भ्रूण के विकास को निर्देशित कर उसे एक पूर्ण विकसित मानव शिशु के रूप में परिवर्तित होने में सहायता करता है।

हाल ही में जी-8 देशों की एक विशेष बैठक में यह निर्णय लिया गया है। कि मानव संजीन से संबंधित प्राथमिक जानकारी तथा आंकड़ों को संसार के सभी देशों को निर्बाध रूप से उपलब्ध

कराया जाएगा। इस बैठक में जी-8 देशों के अलावा भारत, चीन, मैक्सिकों तथा ब्राजील भी विशिष्ट अतिथि के रूप में शामिल थे। मानव संजीन परियोजना के प्रथम सोपान के रूप में मानव कोशिकाओं के केंद्रक में पाए जाने वाले जीनों का चित्रण कर लिया गया है। अभी इसको पढ़ना और विश्लेषित करना बाकी है। जैसे-जैसे आनुवंशिकी इबारत को वैज्ञानिक पढ़ते जाएंगे उसी क्रम में चिकित्सा जगत में क्रांतियाँ होती जाएंगी। इस परियोजना के लिए ब्रिटेन की बहुचर्चित स्वयंसेवी संस्था वेलकम ट्रस्ट ने पूर्वी ब्रिटेन के कैम्ब्रिज में स्थित सागर संस्थान को 10 करोड़ पाउण्ड का अनुदान उपलब्ध कराया। बाद में परियोजना को अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया गया और अंततः 6 देश ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, जापान और चीन इसमें भागीदार बने। इस परियोजना में ब्रिटेन का वेलकम ट्रस्ट, और कैम्ब्रिज का सेंजर सेंटर, तथा अमेरिका का मैसाचुसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टैक्नॉलजी (एम.आई.टी.) स्थित व्हाइटहेड इंस्टीट्यूट फार बायोमेडिकल रिसर्चेज, सेंट लुइस स्थित वांशिगटन स्कूल ऑफ मेडिसिन, ह्यूसटन का बेयलर कॉलेज ऑफ मेडिसिन के अतिरिक्त एक अमेरिकी कम्पनी सेलेरा जीनोमिक्स संलग्न है।

1992 में भारत को भी इस परियोजना में शामिल होने का प्रस्ताव था और भारत इसमें भाग लेने में सक्षम भी था। भारत का मानना था कि देश को ट्रापिकल बीमारियों से लड़ना ही अभी शेष है, आनुवंशिक बीमारियों के बारे में बाद में ध्यान दिया जाएगा। परन्तु भारत के इस परियोजना में शामिल होने के विषय में 'सेंटर फार सेलुलर एंड मालीक्यूलर बॉयलोजी', हैदराबाद के निदेशक

द्वारा तैयार प्रस्ताव को विज्ञान व प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने अस्वीकार कर दिया।

वैसे भारत में जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एकल जीन के आधार पर कई काम चल रहे हैं। एक साथ अनेक जीनों के आधार पर चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान अभी शुरू नहीं किए गए हैं। संजीन श्रृंखला के उद्घाटन के बाद मानसिक कमजोरियों पर चल रहे शोध को विशेष गति मिलने की आशा है। जैवप्रौद्योगिकी विभाग और नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ एण्ड न्यूरोसाइंसेज (निमंहास) द्वारा संयुक्त रूप से दो मानसिक बीमारियों 'सिजोफ्रोनिया' तथा 'मैनिक डिप्रेशन' से पीड़ित लोगों के आनुवंशिक संरचना का अध्ययन किया जा रहा है। हमारे देश के इंडियन 'स्टैटिस्टिकल इंस्टीट्यूट' (कोलकाता), सेंटर फार बायोटेक्नोलॉजी (दिल्ली), इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस (बंगलौर) तथा सेंटर फार सेलुलर एण्ड मौलिक्यूलर बॉयलोजी (हैदराबाद) में विशेष रूप से मानव संजीन संबंधी अनुसंधान किए जा रहे हैं। हैदराबाद की प्रयोगशाला में तो मानव संजीन में विसंगति पकड़ने की तकनीक का विकास भी किया जा चुका है। हैदराबाद स्थित कम्पनी डी.एन.ए. चिप्स विकसित करने की दिशा में 30 करोड़ रुपए की लागत से एक परियोजना शुरू कर रही है।

मानव संजीन परियोजना को 2005 तक पूरा करने का लक्ष्य रखा गया था पर तकनीकी विकास और कम्पनियों की व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता को देखते हुए इस परियोजना की समयावधि को घटाकर 2003 तक कर दिया गया।

26 जून, 2000 को संजीन परियोजना के प्रमुख फ्रांसिस कालिन्स तथा प्राइवेट अमेरिकी कम्पनी सेलेरा जीनोमिक्स के

प्रमुख क्रैंग विंटर के द्वारा मानव जीनोम को तैयार कर लेने की संयुक्त रूप से घोषणा लन्दन में की गई। इस परियोजना के प्रथम चरण के संपूरण में 6 देशों के 1000 से अधिक शीर्षस्थ वैज्ञानिकों के द्वारा विश्व भर की 20 प्रयोगशालाओं में दिन रात किए गए अथक प्रयास व अनुसंधान शामिल हैं।

मानव संजीन परियोजना के अन्तर्गत प्रथम सोपान में 3.1 अरब क्षार युग्मों (या कोडानों) का मानचित्रण कर लिया गया है। इस प्रकार जीवन पुस्तिका के अक्षर है चार नाइट्रोजन क्षार, जैसे- एडिनीन (ए), थायमीन (टी)/ग्वानीन (जी) साइटोसीन (सी) जो विशेष क्रम में क्रमबद्ध होकर जीवन की भाषा के 'शब्दों' और 'वाक्यों' की रचना करते हैं। इन्हीं क्षारों से निर्मित होने वाले अक्षर/वाक्य ही जीन हैं जो सूचना की आधारभूत इकाइयाँ हैं। जीन यह सुनिश्चित करते हैं कि भावी मनुष्य का जीवन कैसा होगा और वह अपने जैविक गतिविधियों - पाचन, विकास, प्रजनन का निष्पादन कैसे करेगा और यह भी कि बीमारियों के खिलाफ कैसे लड़ेगा।

मानव संजीन परियोजना ने डी.एन.ए. का निर्माण करने वाले 3.1 अरब क्षार युग्मों को क्रमबद्ध करके जो कार्यकारी प्रारूप तैयार किया है उसके अनुसार वैज्ञानिकों ने 97% जीन मानचित्रण सम्पन्न कर लिया है। इसमें 85% एकदम परिशुद्ध है। यद्यपि यह अब भी स्पष्ट नहीं है कि मानव कोशिकाओं के केंद्रक में डी.एन.ए. नामक जो आनुवंशिक पदार्थ पाया जाता है, उसका निर्माण कितनी जीनें करती हैं। जीनोम परियोजना ने जो क्रांतिकारी ड्राफ्ट तैयार किया है, वह एक तरह से डी.एन.ए. के सभी अक्षरों

का अस्पष्ट क्रम है। जिस प्रकार वे मानव गुणसूत्र पर क्रमबद्ध होते हैं। गुणसूत्र डी.एन.ए. निर्मित होते हैं। डी.एन.ए. कुंडली पर तीन-तीन अक्षरों (ट्रिपलेट ऑफ एटी/जीसी) के समूह ही जीन/आनुवंशिक कूट होते हैं जो समस्त प्रजातियों के गुणधर्मों का निर्धारण करते हैं। डी.एन.ए. अणु में कितने जीन हो सकते हैं यह कहना अभी बहुत मुश्किल है क्योंकि जीनों की लम्बाई में बहुत भिन्नता होती है। कुछ जीनों में तीन क्षार होते हैं तो कुछ में क्षारों की संख्या हजारों तक हो सकती है। मानव कोशिका में पाये जाने वाले समस्त जीन समुच्चय (सेट आफ जीन्स) को संजीन कहते हैं। वैज्ञानिक के आकलन के अनुसार मानव संजीन में प्रायः 100000 जीनें हो सकती हैं फिर भी ठीक से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। संजीन मानचित्रण के बाद सबसे कठिन कार्य हजारों प्रोटीनों को पहचाना, समझना और विश्लेषित करना है जो जीनों में निर्मित होती है।

संजीन के अध्ययन में सबसे पहले गुणसूत्रों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेते हैं। इन टुकड़ों का क्लोन तैयार करते हैं फिर इनके डी.एन.ए. का पाँच बार विश्लेषण करके इनमें मौजूद क्षारकों का क्रम निर्धारित करते हैं। उस समय तक इलेक्ट्रोफोरेसिस से डी.एन.ए. को न्यूनतम 30000 न्यूक्लिटाइडों तक के ही छोटे टुकड़ों में तोड़ा जा सकता है। अतः पूरे मानव संजीन को इस तरह से तोड़ने पर कुल लगभग एक लाख टुकड़े तैयार हो जाते हैं। इतनी अधिक संख्या में इन टुकड़ों को क्रमबद्ध करके सभी टुकड़ों को फिर से उनके वास्तविक क्रम में समायोजित करना काफी मुश्किल कार्य होता है। लेकिन प्रौद्योगिकी में आई क्रांति के

कारण यह कार्य आसान हो गया है। इसमें स्वतः क्रमबद्धीकरण मशीनों (आटो सीक्वेशिंग मशीन) ने प्राथमिक भूमिका निभाई अन्यथा इतने तन्तुओं को फिर से उचित क्रम में जोड़ना एक तरह से असम्भव ही था। क्रैंग वेंटर ने 1998 में परकिन-एल्मर के सहयोग से सेलेरा जीनोमिक्स की स्थापना की तथा क्रमबद्ध करने वाली मशीन की खोज की थी जो पाँच क्षारयुग्मों को एक दिन में कर सकती थी। सन् 1999 में इस कम्पनी ने 300 ऐसी मशीनें खरीदी और इसके परीक्षण के तौर पर फल मक्खी के संजीन का क्रमबद्धीकरण कुछ महीनों में ही पूरा कर लिया। फल मक्खी के संजीन में तेरह करोड़ बीस लाख क्षारयुग्म होते हैं। इस कार्य में जापान तथा चीन ने भी हाथ बंटाया था।

इस परियोजना का एक मुख्य उद्देश्य अलग-अलग समुदायों में डी.एन.ए. के अन्तर को स्पष्ट करना है। मनुष्य आनुवंशिक तौर पर आपस में 99.8 प्रतिशत तक समानता रखते हैं अर्थात् मनुष्य प्रजाति में आनुवंशिक स्तर पर केवल 0.2 प्रतिशत का ही अन्तर होता है। यह इस तरह से भी कहा जा सकता है कि किन्हीं 500 न्यूक्लियोटाइडों में मात्र एक न्यूक्लियोटाइड ऐसा होता है जो किन्हीं दो व्यक्तियों में अलग होता है। इसका मोटा अनुमान यह लगा सकते हैं कि किसी भी दो व्यक्तियों के पूरे तीन अरब संजीन में करीब साठ लाख संजीन का अन्तर होता है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य में मिलने वाले लगभग 60 हजार संजीन पूरे संजीन का 3 से 5 प्रतिशत होते हैं। इसका मतलब यह होता है कि इन शब्दों और वाक्यों के बीच तमाम अक्षर जहाँ-जहाँ फैले पड़े हैं उनका कुछ न कुछ अर्थ जरूर होना चाहिए। पर इन सबके बारे में जानना एक चुनौती से कम नहीं है।

मानव संजीन के मानचित्रीकरण को चिकित्सा विज्ञान में वरदान के रूप में देखा जा रहा है। जीनों के गुण दोषों को समझ लेने से अब कैंसर, अस्थमा, मधुमेह, अल्झीमर, हृदय विकार-जैसी बीमारियों का निदान आसान हो जाएगा। जन्मजात आनुवंशिक बीमारियों या कमियों, जैसे- वर्णान्धता (जिसमें रोगी हरे तथा लाल रंग में अन्तर नहीं कर पाता है) हीमोफीलिया (जिसमें चोट लग जाने पर लगातार रक्तस्राव के कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है), डाउन्स सिन्ड्रोम (जिसमें व्यक्ति का अल्प विकास होता है तथा युवावस्था के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो जाती है) आदि को भी उपचारित किया जा सकेगा। सम्भव है आज की सबसे खतरनाक लाइलाज बीमारियों जैसे-एड्स, एबोला, सेप्टीसीमिया तथा हेपटाइटिस बी आदि का प्रभावी इलाज शीघ्र ही खोज लिया जाए।

मानव संजीन के मानचित्रीकरण से अनेक नैतिक पहलू भी जुड़े हैं जो विचारकों तथा शुद्धतावादियों को बेहद परेशान किये हुए हैं। सम्भव है संजीन के दुरुपयोग से समाज में नई-नई प्रकार की विसंगतियाँ व समस्याएं पैदा हो जाए। संजीन की समझ से आनुवंशिक विभाजन का खतरा है। सम्भव है अमीर-गरीब जैसे वर्ग की तरह ऐसे वर्ग बन जाए जिनमें परिष्कृत जीन वाले उच्च कोटि के लोग हो जाए तथा दूसरी ओर ऐसे लोग हों जिनमें प्राकृतिक जीन हों। यह भी हो सकता है कि एक ही लिंग के व्यक्तियों की संख्या समाज में व्यापक रूप से बढ़े। इस खोज से मनचाही गुणों वाली संतानों का सपना बहुत जल्द साकार हो सकता है। डिजाइनर शिशु, सामान्य बच्चों, शारीरिक-मानसिक

रोगी शिशुओं को स्वभावतः घृणा की दृष्टि से देखेंगे। इससे बंधुत्व, सौहार्द्र की भावना समाज से लुप्त हो सकती है और एक जड़वत समाज पनपने लगेगा।

संजीन मानचित्रीकरण से यह जान लेना सम्भव हो जाएगा कि किसी व्यक्ति को जीवन में कौन-सी व्याधि ग्रस्त कर सकती है? ऐसी स्थिति में यह पूर्व जानकारी रोजगार, बीमा, चिकित्सा, सेवा, और शिक्षा के क्षेत्र में भेदभाव भी उपजाएगा। लोगों को रोजगार मिलना दुष्कर हो जाएगा। बीमा कम्पनियाँ बीमा नहीं करेंगी और ज्ञान-विज्ञान तथा अधुनातन प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कार्यरत प्रयोगशालाएं ऐसे छात्रों को शिक्षा से भी वंचित कर देगी जिनके रोगी होने की पूर्व जानकारी मिल जाएगी। निस्संदेह हम एक पशुवत, जड़वत, अज्ञानी समाज की रचना करने में कुछ वर्षों में तल्लीन हो जाएंगे। अतः यदि जीनोम के प्रयोग में सावधानी न बरती गई या जीनोम के साथ अनावश्यक छेड़-छाड़ किया गया तो जीनोम सम्पूर्ण मानवता के लिए कब्रगाह भी साबित हो सकता है।

पौध जीनावली विज्ञान (प्लांट जीनोमिक्स) ने इस बात की संभावना उजागर की है कि पौधों और फसलों में भी मनचाहे ढंग से परिवर्तन किया जा सकेगा। जीनावली के अन्तर्गत किसी पादप के सभी जीनों, उनकी संरचना, अवस्थिति तथा कार्य का पूरा मानचित्र तैयार किया जाता है।

किसी भी पौधे के पूर्ण आनुवंशिक कूट को समझने में पहली बार वैज्ञानिकों को दिसम्बर माह (2000) में सफलता प्राप्त हुई है। इस मिशन के लिए अमेरिका, जापान व यूरोपीय संघ के निजी एवं

सरकारी क्षेत्र के वैज्ञानिकों ने **'अरबिडोप्सिस जीनोम इनीशिएटिव'** नाम से एक परियोजना 1996 से प्रारम्भ की थी तथा इसे 2000 तक ही पूरा करने का लक्ष्य निर्धारित किया था।

इस संजीन परियोजना के लिए क्रूसीफेरी कुल के पौधे **अरबिडोप्सिस थलिआना** को चुना गया था। इसमें केवल 5 ही गुणसूत्र होने के कारण यह अपेक्षाकृत सरल एवं छोटा प्रयोग था। इसके 2 व 4 गुणसूत्र का खुलासा 1999 में ही कर लिया गया था, जबकि 1, 3 व 5 गुणसूत्रों की क्रमबद्धीकरण 14 दिसम्बर, 2000 की नेचर पत्रिका में प्रकाशित किया गया है।

'अरबिडोप्सिस' के आनुवंशिक कूट को समझने के बाद इसी क्रम में वैज्ञानिकों ने लम्बे शोध और अनुसंधान के फलस्वरूप धान के संजीन को पूरी तरह से पढ़ने में सफलता प्राप्त की हैं। अनुसंधान कर्ताओं के अनुसार उन्हें इस महत्वपूर्ण व्यावसायिक फसल का उत्पादन बढ़ाने की दिशा में पहली बार सफलता प्राप्त हो गई है और इसके सार्थक परिणाम ज्यादा से ज्यादा चार-पाँच वर्ष में दुनिया के समक्ष रखे जा सकेंगे। इस परियोजना के मुख्य कार्यकारी 'पीटर मेलड्रम' हैं। परियोजना के संचालक ने कहा है कि वे बहुराष्ट्रीय अमेरिकी कम्पनी मोनसेंटों के साथ इस योजना के व्यावसायिक पक्ष पर समझौता करना चाहेंगे और मोनसेंटों ने इस घोषणा को पूरे उत्साह के साथ स्वागत किया है।

पौधों के पूर्ण आनुवंशिक कूट का खुलासा होने से वनस्पति जगत में क्रांति आने की सम्भावना है। इसके आधार पर मनचाही गुणवत्ता एवं उपज वाली वनस्पतियों का उत्पादन करना सम्भव हो सकेगा तथा 'सुपर क्रॉप्स' की एक नई हरित क्रांति लाई जा सकेगी।

डी.एन.ए. की खोज से लेकर संजीन के श्रेणीबद्ध होने तक सफलता के सोपान

1869	डी.एन.ए. की खोज हुई।
1909	'जीन' शब्द पहली बार प्रयोग हुआ। डी.एन.ए. का रासायनिक संयोजन (संगठन) जान लिया गया।
1944	डी.एन.ए. वंशानुगत गुणों से जुड़ा है, का पता चला।
1951	डी.एन.ए. का पहला एक्सरे चित्र बनाया गया।
1953	जेम्स डी. वाटसन, फ्रांसिस क्रिक और मारिस विलकन्सि के समेकित प्रयासों से डी.एन.ए. की दुहरी कुडली वाला मॉडल प्रस्तुत।
1956	कृत्रिम डी.एन.ए. का निर्माण किया गया।
1957	आण्विक जीन विज्ञान के सिद्धांत की स्थापना हुई कि कोशिकीय सूचना का प्रवाह डी.एन.ए.-आर.एन.ए.-प्रोटीन संश्लेषण है।
1962	डी.एन.ए. मॉडल प्रस्तुति के लिए वाटसन, क्रिक और विलकिन्स को चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार।
1966	आनुवंशिक कूट अनुकूटित और जाना गया कि आर.एन.ए. क्षारों के त्रिक एक अमीनों अम्ल को सूचित करते हैं (निर्देश) और इस प्रकार प्रोटीन संश्लेषण में भाग लेते हैं।
1968	भारतीय मूल के अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. हरगोविन्द खुराना को कृत्रिम डी.एन.ए. संश्लेषण के लिए मार्शल

नीरेनवर्ग और राबर्ट होले के साथ संयुक्त रूप से चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार मिला।

1969 पहली बार जीन अलग किया गया।

1970 कृत्रिम जीन बनाया गया।

1972 जीन क्लोनिंग सम्बन्धी प्रयोग आरंभ।

1976 कृत्रिम जीन को पहली बार जीवाणु कोशिका में प्रविष्ट कराया गया।

1977 पहली बार किसी विषाणु डी.एन.ए. को अनुकूटित किया गया।

1978 इन्सुलिन हार्मोन का निर्माण करने वाली जीनों को पहली बार **'इश्चेरिसिया कोलाई'** नामक जीवाणु कोशिका में प्रविष्ट कराया गया और उसने इन्सुलिन हार्मोन बनाया। जीवाणु जन्य इन्सुलिन निर्माण के सफल प्रयोग और मानव पर उसके प्रयोग की जांच अमेरिका में सम्पन्न और इसकी सफलता की घोषणा।

1981 जीन को जंतु की एक जाति से दूसरी में स्थानान्तरित किया गया।

1982 अमेरिका की इलीलिली एंड कम्पनी द्वारा जीवाणु जन्य इन्सुलिन का उच्च स्तर पर उत्पादन आरंभ। हयूमिलिन व्यापारिक नाम से विश्व बाजार में उपलब्ध।

1983 प्रथम कृत्रिम गुणसूत्र बना।

1984 डी.एन.ए. अंगुलि छाप तकनीक आरंभ।

1985 संपूर्ण मानव संजीन को क्रमबद्ध करने संबंधी प्रथम बैठक।

1988 मानव संजीन संगठन द्वारा डी.एन.ए. को अनुक्रमित करने का लक्ष्य निर्धारित।

डी.एन.ए. अंगुलि छाप तकनीक के आधार पर बंगलूर पुलिस ने दिसम्बर 1988 में चर्चित बीना हत्याकांड की गुत्थी को सुलझाया।

अमेरिकी राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद मानव संजीन परियोजन समर्थित।

1989 तलसेरी (केरल) में पैतृकता सम्बन्धी चल रहे मुकदमें में महत्वपूर्ण फैसला इसी तकनीक के आधार पर किया गया।

1990 राजीव गाँधी हत्याकांड में आत्मघाती दस्ते और मानव बम बनी धनु की पहचान स्थापित करने, शिवराजन् का सम्बन्ध खोज निकालने में डी.एन.ए. अंगुलि छाप तकनीक का महत्वपूर्ण योगदान।

3 अरब डालर की अंश पूजी से 15 वर्षीय मानव संजीन परियोजना आरंभ।

1993 जीन चिकित्सा की मदद से चूहे की 'सिस्टिक फाइब्रोसिस' से बचाया गया।

1995 स्वतंत्र जीवी हीमोफिलिस इन्फ्यूएंजी नामक जीव संजीन संपूर्ण।

1998 **"सीनोर हैबडाइटिस इलीगैंस"** नामक एक कीड़े के जीनोम का सम्पूर्ण ज्ञान अर्जित व संजीन को डीकोड किया गया।

1999 मनुष्य के 22वें गुणसूत्र की क्रमबद्धता की पूर्ण जानकारी।

मानव संजीन परियोजना द्वारा सन् 2000 तक मानव संजीन की क्रमबद्धता ज्ञात कर लेने की घोषणा।

2000 मानव संजीन की आरंभिक रूपरेखा तैयार। 26 जून को लन्दन में घोषणा। **अरबिडोप्सिस** व धान के संजीन का मानचित्रीकरण सम्पूर्ण।

अध्याय - 16

अनुसंधान एवं विकास के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

अमेरिका में मानव के भ्रूण की कोशिकाओं से शरीर के अलग-अलग हिस्से बनाने में एक शोध कार्यक्रम चल रहा है। इस शोध कार्यक्रम में दुनिया की कुल दस बड़ी शोध प्रयोगशालाएं मदद कर रही हैं। जिसमें भारत की भी दो प्रयोगशालाएं शामिल हैं। इन प्रयोगशालाओं का काम भ्रूण की आधार कोशिका (एम्ब्रियोनिक स्टेम सेल) की आपूर्ति करना है। भ्रूण की आधार कोशिकाएं पाँच से सात दिन पुराने मानव भ्रूण से निकाली जाती हैं। भ्रूण की शुरुआती कोशिकाएं ही विकसित होकर मानव शरीर के अंग बनाती हैं। अमेरिकी सरकार के धन पर चल रही परियोजना के अध्ययनकर्ताओं का मानना है कि इस तकनीक से कई गंभीर बीमारियों जिनमें शरीर के ऊतकों को क्षय हो जाता है, इलाज आसान हो जाएगा। मिसाल के तौर पर मधुमेह, हृदय रोग, अल्जाइमर और पार्किन्सन-जैसी बीमारियों का इलाज भ्रूण से ऊतक बनाने की विधि से बहुत सुगम हो जाएगा।

छठी या सातवीं सदी में रचित भारतीय ग्रंथ मारकन्डेय पुराण में वर्णित मानव भ्रूण की विकास से जानकारी लेकर भारत के एक चिकित्सा विज्ञानी ने एक क्रांतिकारी शोध किया है इसके तहत मानव शरीर का कोई भी अंग दुबारा एक विशेष विधि से शरीर के अन्दर ही विकसित किया जाता है। मौलाना आजाद मेडिकल कालेज के 'डॉ. बी.जी. मातापुरकर' ने यहाँ विज्ञान एवं तकनीक मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी और मंत्रालय के सचिव प्रोफेसर एस. राममूर्ति की मौजूदगी में इस अनोखी चिकित्सा विधि की घोषणा की जिसका पेटेंट अमेरिका में करवाया गया है। इस मानव अंग विकास की विधि की जानकारी देते हुए डॉ. मातापुरकर ने बताया कि फिलहाल गुर्दा-जैसे अंगों के प्रतिरोपण के लिए किसी दूसरे मानव का गुर्दा लेना पड़ता है और सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि दोनों व्यक्तियों के गुर्दा ऊतक और रक्त प्रकार समानता होनी चाहिए फिर यह गुर्दा जिसके शरीर में लगाया जाता है वहाँ ज्यादा टिक भी नही पाता, लेकिन प्राकृतिक तरीके से किसी भी अंग का ऊतक निकालकर उसे दुबारा उसी स्थान विकसित करने की विधि पहली बार दुनिया में विकसित की गई है। इस विधि से नया अंग लगाने के लिए किसी भी अंगदाता की जरूरत नहीं रहेंगी क्योंकि शरीर अपनी ही कोशिकाओं से ऊतक बनाता है, इसलिए किसी बाहरी कोशिका को अस्वीकार करने की समस्या नहीं पैदा होती है। डॉ. मातापुरकर ने बताया कि इस शोध की उन्हें प्रेरणा भारतीय ग्रन्थों से ही मिली है। इन्होंने कहा कि महाभारत संहिता में भी प्राचीन चिकित्सा शास्त्री द्वेप्यान ऋषि ने गर्भधारण करने वाली महिलाओं के ऊतक से कई बच्चों के पैदा करने का उल्लेख किया है।

इन्होंने कहा कि किसी खास अंग की कोशिका को लेकर फिर उसी अंग में विकसित करने में दो से पाँच महीने तक का समय लग सकता है। इस तरह के प्रयोग कुत्तों और बंदरों पर सफलतापूर्वक हो चुके हैं और करीब साठ हार्निया के प्रयोग किए गए हैं। कुत्तों और बन्दरों में यूरेटर, फेलोपियन ट्यूब और गर्भाशय आदि अंगों के प्रयोग सफल रहे है। अब इसका प्रयोग मानवों पर किया जाएगा।

डॉ. मातापुरकर के अनुसार विज्ञान एवं तकनीक मंत्रालय के टाइफेक विभाग के पेटेंट सुविधा केंद्र की मदद से इस अंग विधि का पेटेंट अमेरिका में 29 अगस्त 1977 को दर्ज किया गया था और इसकी पुष्टि अमेरिकी पेटेंट कार्यालय ने कर दी है।

वैज्ञानिकों ने मानव भ्रूण से कोशिका लेकर हृदय की माँसपेशी विकसित करने और उससे इंसुलिन बनाने में भी सफलता पाई है इससे हृदय रोग और मधुमेह के इलाज के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन आने की सम्भावना है। हाल के शोधों में वैज्ञानिक इन भ्रूण कोशिकाओं से हृदय के ऊतक (कार्डियोमायोसाइट) बनाने में सफल रहे हैं। यदि इन कोशिकाओं को किसी मानव हृदय से जोड़ दिया जाए तो इससे हृदय की पूर्ण विकसित माँसपेशियाँ तैयार हो सकती हैं। दिल का दौरा पड़ने से अपने हृदय माँसपेशी गँवाने वाले लोगों को इस शोध से बहुत उम्मीद है और इससे दिल की बीमारी वाले रोगियों के इलाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आने की सम्भावना है। शोध कर्त्ताओं ने भ्रूण कोशिकाओं से इंसुलिन बनाने में भी सफलता पाई है। इससे मधुमेह के रोगियों के इलाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आ सकता है।

भारतीय उद्यान अनुसंधान संस्थान (आई.आई.एच.आर.), बैंगलूर के फल विभाग के प्रमुख जी.एस. प्रकाश बताते हैं कि अब आम के नये पौधे बिना बीज से तैयार किए जा रहे हैं। इस संस्थान ने आम की विविध किस्मों को एक-दूसरे में समायोजित करके न केवल बेहतर किस्म के आम के पौधे विकसित किए है बल्कि स्वाद और उत्पादन में भी यह परम्परागत आमों से भी आगे हैं। अब पराजीनी पौधों के जरिए आमों की उन्नत किस्में विकसित की जा रही हैं।

ब्रिटेन के फल विशेषज्ञ जल्द ही बाजार में ऐसे सेब, स्ट्राबेरी और संतरे आदि ला रहे हैं जिनको खाकर दांतों में लगे जीवाणुओं को आसानी से मारा जा सकेगा। इतना ही नहीं, इन फलों का सेवन करने वालों को दाँतों की रक्षा करने वाला टीका अपने आप मिल जाएगा और यह टीका दाँतों में सड़न पैदा करने वाले **'स्ट्रेप्टोकॉकस म्यूटास'** नामक जीवाणु का सफाया कर देगा। वास्तव में यह टीका एक प्रोटीन है। पी-1025 इस प्रोटीन को पैदा करने वाला जीन यानी वंशाणु जीनीयागिरी की तकनीक से पौधों की कोशिकाओं में मौजूद हरित लवक (क्लोरोप्लास्ट) में डाल दिया गया है। इन हरित लवकों में मौजूद क्लोरोफिल ही पौधों में हरा रंग प्रदान करता है तथा यही पौधों की वह रसोई है जिसमें सूरज की धूप को प्रकाश संश्लेषण द्वारा कार्बोहाइड्रेट और ग्लूकोज सहित उन तमाम पौष्टिक तत्वों में बदल दिया जाता है जो हमें अनाज, फल, सब्जी, दाल, तिलहन तथा रेशों के रूप में प्राप्त होते हैं और इस प्रक्रिया में फल, सब्जी स्वास्थवर्धक टीके भी प्रदान करेंगे। जीनीयागिरी की तकनीक से पराजीनी फल बनाने का यह

चमत्कार इंग्लैंड के वेस्ट मालिंग स्थित हार्टीकल्चर रिसर्च इण्टरनेशनल के प्रोफेसर डेविड जेम्स और इंग्लैंड के सेंट थामस स्कूल ऑफ डेटिस्ट्री तथा गॉड हास्पिटल के इम्यूनोलॉजी डिपार्टमेन्ट के विशेषज्ञों के आपसी सहयोग का परिणाम है।

जीनोमेक्स या संजीन के अध्ययन से कैंसर रोगियों की बढ़ती रफ्तार को रोकने में सफलता मिलने लगी है। वैज्ञानिकों ने 'हर-2' नामक ऐसे जीन का पता लगाया है जिसकी रासायनी को रोक देने से स्तन कैंसर को और अधिक फैलने से रोका जा सकता है। कैंसर विज्ञानी इसे एक बहुत बड़ी सफलता मान रहे हैं। वैज्ञानिकों ने ऐसे जीनों के समूह यानी संजीन की खोज प्रारम्भ कर दिया है जो कैंसर-जैसे भयानक रोगों को आनुवंशिक करने तथा उन पर नियंत्रण करने के लिए उत्तरदायी है जीन 'पी-53' जिसे 'गार्जियन ऑफ ह्यूमन जीनोम' के नाम से जानते हैं। लगभग 52 प्रकार के मानव कैंसर के लिए उत्तरदायी पाया गया है। हरसेप्टिन या 'हर-2' की खोज महत्वपूर्ण मानी जा रही है। वास्तव में यह कैंसर कोशिका की कार्यिकी नियंत्रित (एपोटोसिस) के लिए उत्तरदायी है। इन जीनों को रूक कर (लॉक कर) हम पूरी कोशिका को नियंत्रित कर सकते हैं और उस कैंसर कोशिका के प्रसार को रोक सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने टमाटर के पौध से एसीसी सिन्थेज नाम के जीन को अलग करने में सफलता हासिल की है। वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि इन जीनों में सुधार लाकर फलों व सब्जियों के पकने की रफ्तार को कम किया जा सकेगा। इससे फल व सब्जियां ज्यादा समय तक सुरक्षित रहेंगी। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के

वैज्ञानिक डॉ. कैलाश बंसल ने बताया कि फलों को पकाने में सहायक हार्मोन 'एथिलीन' को पौधों में बढ़ने से रोकने के लिए इस नई तकनीक का विकास किया गया है। इस तकनीक के जरिये फल व सब्जियाँ जल्दी खराब नहीं होंगी और इससे इनके निर्यात को भी बढ़ावा मिलेगा।

छत्तीसगढ़ के कृषि वैज्ञानिक एवं सोसाइटी फॉर पाथेनियम मैनेजमेंट, (सोपम) रायपुर के संयोजक पंकज अवधिया ने एक ऐसे कीट की पहचान करने का दावा किया है जो प्लास्टिक (पॉलीथीन) भक्षी है। छत्तीसगढ़ में पाये जाने वाले 135 विभिन्न कीटों पर लगभग दो वर्ष के अध्ययन के उपरान्त उन्हें ऐसे कीट का पता लगा है। इस कीट को उन्होंने 'प्लास्टिक बग' नाम दिया है। श्री अवधिया ने कहा कि इस कीट के प्रजनन में वृद्धि करके प्लास्टिक कचरे का निदान किया जा सकता है।

कोलकाता विश्वविद्यालय की सूक्ष्मजीव प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने आसानी से मिट्टी में उपलब्ध जीवाणुओं की मदद से 'पॉली हाइड्राक्सी ब्यूरेट' (पी.एच.बी.) नामक पॉलीमर बनाया है। यह जैविक रूप से नष्ट होने में सक्षम है। इसके इस्तेमाल से पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले प्लास्टिक का इस्तेमाल बंद किया जा सकेगा।

अमेरिकी वैज्ञानिकों के एक दल ने मनुष्य की लम्बी आयु सुनिश्चित करने वाले जीनों के एक छोटे से समूह का पता लगाने का दावा किया है। प्रोसीडिंग ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेस के ताजा अंक में बताया गया कि मनुष्य की लम्बी आयु के लिए कुछ या एक ही जीन जिम्मेदार है जबकि पहले माना जाता

था कि यह सैंकड़ों जीनों का काम है। विशेषज्ञों को उम्मीद है कि कोशिकाएं समय के साथ कैसे क्षीण होती हैं, इस बात की विस्तृत जानकारी मिलने के बाद इसे रोकने के लिए दवा भी विकसित कर ली जाएंगी।

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने पहली बार मानव भ्रूण कोशिकाओं से रक्त कोशिकाओं का निर्माण किया है जिससे अब प्रयोगशालाओं में रक्त का निर्माण संभव हो सकेगा। विस्कोनसिक विश्वविद्यालय के शोधकर्त्ताओं के अनुसार अब इस बात का पता चल सकेगा कि रक्त कोशिकाओं का विकास किस तरह होता है और एक दिन ऐसा भी आएगा जब प्रयोगशाला में निर्मित रक्त का उपयोग चिकित्सा संबंधी अन्य कार्यों में किया जा सकेगा। शोध के अध्यक्ष डाक्टर काउफमेन और उनके सहयोगियों ने मानव भ्रूण की स्टेम सैल्स को चूहे की अस्थि मज्जा से बनाए गए संवर्ध माध्यम में रखा। इस माध्यम में वे सभी पोषक तत्व थे जो रक्त कोशिकाओं के निर्माण में सहायक होते हैं। बाद में इन कोशिकाओं को फीटल बोवाइन सीरम माध्यम में रखा गया जहाँ वे प्रारम्भिक रक्त कोशिकाओं (जिन्हें हेमोपोइटिकप्रिकस कहा जाता है) में विकसित हुई। नेशनल अकादमी ऑफ साइंसेज द्वारा प्रकाशित इस शोध पत्र में कहा गया है कि इन कोशिकाओं को अन्य वृद्धि कारकों के साथ रखा गया। बाद में ये कोशिकाएं लाल रक्त-कणिकाओं, श्वेत रक्त कणिकाओं और रक्त बिम्बाणु में बदल गईं। ये नवनिर्मित रक्त कोशिकाएं उसी प्रकार की थीं जिस तरह की वयस्क मानव की अस्थि मज्जा से बनती हैं। यह प्रक्रिया अभी केवल प्रायोगिक स्तर पर ही है, लेकिन एक दिन ऐसा आएगा जब स्टेम कोशिकाओं से

निर्मित रक्त का उपयोग रक्त दान, ल्यूकीनिया और दूसरे प्रकार के कैंसर से पीड़ित व्यक्तियों में अस्थि मज्जा कोशिकाओं के प्रतिरोपण से किया जा सकेगा। स्टेम सेल्स एक ही मानव भ्रूण से विकसित होती है। इस क्षेत्र में अभी और शोध की आवश्यकता है। वैज्ञानिकों के लिए यह कदम भी काफी चुनौती-भरा होगा कि इस प्रकार की स्टैम सेल्स से निर्मित रक्त को क्या किसी दूसरे व्यक्ति को दिया जा सकेगा या नहीं?

वैज्ञानिकों को बनावटी प्लाज्मा बनाने में सफलता मिल गई है। इस प्लाज्मा का नाम 'वोलप्लैक्स' रखा है। इस प्लाज्मा को गाय के कोलाजेन ऊतक से प्राप्त जिलेटन से बनाया गया है। इसे रासायनिक दृष्टि से रूपान्तरित करके तरल स्वरूप प्रदान किया गया है और इसकी विशेषता यह है कि यह जीवाणु और किसी भी अन्य रोगाणु से मुक्त है। इसे मरीजों में आसानी से चढ़ाया जा सकता है।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के जैव रसायन विभाग ने मनुष्य को एंथ्रैक्स से ठीक करने वाले टीके का आविष्कार कर लिया है और इस तकनीक का विकास करने वाला भारत दुनिया का तीसरा देश हो गया है। अभी तक एंथ्रैक्स का टीका सिर्फ अमेरिका और रूस के पास है। भोपाल स्थित पशु रोग प्रयोगशाला के निदेशक के.पी. प्रधान ने बताया कि विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानदंडों के आधार पर पहले टीके का प्रयोग पशुओं पर किया जाएगा।

वैज्ञानिकों ने अब कपास, चना, बैंगन, टमाटर, गोभी, सोयाबीन, मक्का, तम्बाकू, आलू की कीट प्रतिरोधी पराजीनी किस्में विकसित कर ली हैं।

अध्याय - 17

वैज्ञानिक परिचय

(1) सुश्रुत

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के भारतीय चिकित्सक 'सुश्रुत' जिन्हें शल्य चिकित्सा का पिता माना जाता है, प्लास्टिक सर्जरी का प्रथम उदाहरण इन्हीं से सम्बन्धित है। इनकी 'सुश्रुत संहिता' में करीब 125 औजारों के साथ-साथ गुर्दे की पथरी तथा मोतिया बिन्द की शल्य चिकित्सा का वर्णन भी मिलता है।

(2) चरक

आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण में 'चरक' नामक वैज्ञानिक का विशेष रूप से योगदान हैं। चिकित्सा विज्ञान में इनके द्वारा रचित 'चरक संहिता' का विशेष महत्व है।

(3) यू.एन. ब्रह्मचारी

ये एक प्रसिद्ध डॉक्टर थे, इन्होंने 'यूरिया स्टीबैनिन' नामक दवा की खोज की जिससे कालाजार नामक बीमारी को ठीक किया जाता है। इस दवा को विश्व स्तर पर स्वीकृति मिल चुकी है।

(4) डॉ. लालजी सिंह

ये हैदराबाद स्थित सेलुलर एण्ड मॉलीकुलर बॉयलोजी इन्स्टीट्यूट के निदेशक हैं। इन्होंने डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिंग के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

(5) डॉ. शम्भूनाथ धर

इन्होंने 'कालरा' नामक बीमारी पर अनुसंधान किया और इस बीमारी की प्रतिरोधी दवा विकसित की।

(6) डॉ. नीलरत्न धर

डॉ. नील रत्न धर (1892-1986) रसायनविज्ञानी थे,जिन्होंने मृदा में नॉइट्रोजन स्थिरीकरण पर शोध किया तथा मृदा में नाइट्रोजन व फास्फोरस के मध्य सम्बन्धों का विशेष अध्ययन किया। डॉ. धर ऊसर के सुधार की दिशा में शोध कराने वाले प्रथम मृदा विज्ञानी थे। इन्होंने शीलाधर मृदा शोध संस्थान की स्थापना की थी।

(7) डॉ. बंसत राम जी खानोलकर

डॉ. खानोलकर (1895-1978) ने भारत में कैंसर पर विशेष कार्य किया। इसी कार्य के कारण इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। इन्होंने कैंसर का पता लगाने के लिए देश के विभिन्न क्षेत्रों में गहन अध्ययन किया। ये उन प्रथम व्यक्तियों में थे जिन्होंने तम्बाकू चबाने वाली आदतों को कैंसर के सम्भावित कारणों के रूप में पाया। इन्होंने बम्बई में **भारतीय कैंसर अनुसंधान** की स्थापना की जिसका नाम बाद में बदलकर 'कैंसर अनुसंधान संस्थान' कर दिया गया। रक्त वर्ण समूहों के क्षेत्र में इन्होंने रक्त समूह खासकर Rh कारकों के सन्दर्भ में इसके प्रजातिगत वितरण को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(8) डॉ. जगदीशचन्द्र बोस

डॉ. बोस ने पौधों और जन्तु जगत की समानता को सिद्ध कर 1907 से 1933 तक पौधों का अध्ययन कर जीवन की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं की प्रणाली को समझने के लिए एक वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया। यही नहीं, उन्होंने दृष्टि एवं स्मृति के विशेष संदर्भों में पौधों और जीवों के ऊतकों की प्रतिक्रिया का विशेष अध्ययन किया। इन्होंने 'फस्फोग्राफ' (पौधों की वृद्धि को सूक्ष्मता से नापने का यंत्र) 'रेजोनेंट रिकार्डर' (ऐसा यंत्र जिससे यह पता चलता था कि चोट लगते व मरते समय पौधे भी काँपते हैं।) के साथ-साथ बेतार के तार का भी आविष्कार किया। इन्हें पूर्व का जादूगर भी कहते हैं।

(9) डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन

डॉ. स्वामीनाथन भारत में हरित क्रांति के जनक माने जाते हैं। इन्होंने उच्च उत्पाकता वाले गेहूँ व धान का विकास किया तथा जूट एवं आलू की प्रजातियों को संवद्धित किया। देश में नई कृषि तकनीकी आरंभ की। ये अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान केंद्र, फिलीपींस के निदेशक रहे।

(10) आनन्द मोहन चक्रवर्ती

आनन्द मोहन चक्रवर्ती ने सुपरबग जीवाणु **'स्यूडोमोनास'** का विकास किया है जिसे पहले जैव पेटेंट के रूप में निबन्धित किया है। यह सुपर बग समुद्र के तेल को खाता है।

(11) डॉ. मालती लक्ष्मीकुमारन

इन्होंने वनस्पतियों का जीनोम कोड तैयार करने में कई सफलताएं हासिल की है। इन्हें इस काम के लिए पहला राष्ट्रीय युवा जैव वैज्ञानिक पुरस्कार भी मिल चुका है। बासमती पेटेंट के मामले में भारत को इनके द्वारा तैयार किए गए डी.एन.ए. अंगुलि छाप तकनीक की वजह से ही जीत हासित हुई।

(12) डॉ. पी. आनन्द कुमार

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिक डॉ. पी. आनंद कुमार ने भारत में पहली बार बैंगन, टमाटर, गोभी तथा आलू की कीट प्रतिरोधी बी.टी. जीन डालकर पराजीनी किस्में विकसित की। इन्होंने एक ऐसे टमाटर का विकास किया है जो एन्थैक्स बीमारी की रोकथाम के लिए टीके का कार्य करता है। इन्हें भारत सरकार द्वारा जैव-विज्ञान सम्मान से सम्मानित किया।

(13) डॉ. अखिलेख कुमार त्यागी

पादप आणिवक जीव विज्ञान विभाग, दिल्ली में अध्यक्ष। इन्होंने कई क्लोरोप्लास्ट जीनों की खोज की व उनके लक्षण बताएं हैं जो प्रकाश संश्लेषण में भाग लेते हैं। इस समय ये लवक हस्तांतरण तंत्र पर कार्य कर रहे हैं।

(14) डॉ. राकेश तुली

राष्ट्रीय वानस्पतिक अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में वैज्ञानिक हैं। इनका प्रमुख कार्य कपास व चने में पराजीनी पौधे बनाना है जो कीट प्रतिरोधी है।

(15) डॉ. राकेश भटनागर

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली के जैवप्रौद्योगिकी केंद्र के अध्यक्ष। जैविक हथियार एन्थ्रैक्स के लिए इनकी टीम ने आण्विक जीवविज्ञान तकनीक द्वारा एक टीके को विकसित किया है।

अध्याय - 18

जैव-प्रौद्योगिकी की उपलब्धियाँ

जैवप्रौद्योगिकी किसी न किसी रूप में हजारों वर्षों से हमारे काम में आती रही है। आसव और अरिष्ट का निर्माण, दही बनाना आदि जैविक क्रियाओं के फलस्वरूप ही सम्भव है। सन् 1970 के दशक में प्रमुखता प्राप्त हुई। आण्विक जीन विज्ञान के अनुप्रयोग के कारण आठवें दशक के मध्य में इसको अधिक गति मिली और प्रयोगशाला की अनेक खोजों के आधार पर औद्योगिक स्तर पर उत्पादन सम्भव हो पाया। आज जैवप्रौद्योगिकी ऊर्जा एवं ईंधन, खाद्य, औद्योगिक रसायन, चिकित्सा, अवशिष्ट संशोधन आदि सभी क्षेत्रों में योगदान करने में सक्षम है। ठोस वैज्ञानिक अभियांत्रिकी, जीवाणुः, मार्गपथ अभियांत्रिकी, उच्च स्तरीय प्रोटीन स्रवण प्रक्रमों आदि में प्रगति विशेष उल्लेखनीय है। इसकी मदद से विशिष्ट रसायनों का उत्पाद सम्भव हो गया है।

जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विगत 300 वर्ष में हुए विकास मील के पत्थर साबित हो रहे हैं। इनके महत्वपूर्ण बिन्दुओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

जैवप्रौद्योगिकी की उपलब्धियाँ

6000 ई.पू.	शराब और मदिरा प्रकिण्व का उपयोग।
4000 ई.पू.	प्रकिण्व की मदद से डबल रोटी का उत्पादन।
2838 ई.पू.	चीनियों द्वारा सॉस बनाने की विधि की खोज।
1667 ई.	'शर्ले' द्वारा कार्बनिक पदार्थो के विघटन द्वारा गैस (मार्शगैस) की खोज
1670 ई.	सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा ताँबे का उत्पादन।
1674 ई.	'ल्यूवेनहॉक' द्वारा सूक्ष्म-जीवाणु को देखने के लिए नये सूक्ष्मदर्शी का निर्माण।
1790 ई.	'प्रिस्टले' द्वारा जैव गैस पर 1776 में बोल्टा के कार्य की पुष्टि।
1804 ई.	'डॉल्टन' द्वारा जैव गैस के अवयव मेथेन के संगठन का विश्लेषण।
1808 ई.	'हम्फ्रे डेवी' द्वारा जैव गैस से मेथेन की प्राप्ति।
1866 ई.	'मेण्डल' द्वारा जैविक उत्तराधिकार व अनुवांशिकता के नियम का प्रतिपादन।
1868 ई.	'रीसेट' द्वारा जैव खादो के ढेर में जैव गैस के उत्पन्न होने की खोज।
1870 ई.	'लुई पाश्चर' द्वारा इस तथ्य की पुष्टि कि किण्वन जीवाणुओं द्वारा होता है।
1876 ई.	'लुई पाश्चर' द्वारा मदिरा किण्वन की विफलता के लिए उत्तरदायी वाहय सूक्ष्म जीवाणुओं की खोज।

1878 ई. प्रथम बार शुद्ध जीवाणु संवर्धन की उपलब्धि।

1890 ई. मोटर गाड़ियों में एल्कोहॉल का प्रयोग।

1893 ई. कार्ल हेमर ने सूक्ष्म जीवियों का प्रयोगकर साइट्रिक अम्ल बनाने की विधि का पेटेंट कराया।

1897 ई. एडुआर्ड बुनकर द्वारा प्रकिण्व से प्राप्त एंजाइम की सहायता से शर्करा का एल्कोहल में रूपान्तरण।

1900 ई. ह्यूग डी ब्रीज के द्वारा मेण्डल के नियमों की पुष्टि।

1902 ई. गाटेलीब हैबर लैण्ड ने पादप कोशिकाओं को पात्रे उगाया।

1910 ई. सूक्ष्म जीवाणुओं के प्रयोग द्वारा बृहद पैमाने पर अवजल शुद्धीकरण प्रक्रम की स्थापना।

1912-14 ई. सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा तीन मुख्य औद्योगिक रसायनों (एसिटोन, ब्यूटेनॉल एवं ग्लिसरॉल) की प्राप्ति और बृहद पैमाने पर उत्पादन।

1920-30 ई. सन्तत किण्वन द्वारा जैविक प्रोटीन का उत्पादन।

1928 ई. 'एलैक्जैंडर फ्लेमिंग' द्वारा पेनिसिलिन प्रतिजैविक की खोज।

1939 ई. प्रथम बार घोल में पादप कोशिकाओं का संवर्धन।

1939-45 ई. 'पेनिसिलिन' के व्यावसायिक उत्पादन के प्रक्रमों की प्राप्ति।

1944 ई. 'ओस्वाल्ड एवरी' द्वारा डी.एन.ए. की आनुवंशिक कारकों के वाहक के रूप में पहचान।

1953 ई. वाटसन, क्रिक और मॉरिस विल्किंस द्वारा डी.एन.ए. की त्रिविमीय संरचना का दोहरी कुण्डली के आकार में होने का पता लगाना।

1955 ई. मिलर तथा सहयोगियों द्वारा काइनेटिन नामक वृद्धिकारक की खोज से किसी अंग के निर्माण को त्वरित किया जा सका।

1954-58 ई. **सिफैलोस्पोरिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन** आदि कई नये प्रतिजैविकों का निर्माण।

1950-60 ई. ऊतक संवर्धन द्वारा पहली बार पौधों को पुनः पैदा करने की विधि का उपयोग।

1962 ई. जीन के पहले प्रकूट को पढ़ा जा सका। कनाडा में सूक्ष्म जीवाणुओं की सहायता से यूरेनियम का उत्खनन।

1966 ई. डी.एन.ए. के पूरे आनुवंशिक कूट को पढ़ा जा सका। डॉ. हरगोविन्द खुराना (बाद में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित) का योगदान।

1970 ई. डी.एन.ए. को काटने में सक्षम प्रतिबंध रिसट्रिक्शन किण्वकों का उपयोग।

1973 ई. पुनर्योजी डी.एन.ए. तकनीक द्वारा एक जीवाणु से दूसरे जीवाणु में जीन हस्तानान्तरण का प्रथम प्रयास सम्पन्न हुआ। आनुवंशिक अभियांत्रिकी का

सफल प्रयोग। ब्राजील सरकार द्वारा पेट्रोल के स्थान पर मोटर गाड़ियों में एल्कोहल का प्रयोग।

1975 ई. हाइब्रिडोमा तकनीक द्वारा एक कृत्तिकीय प्रतिरक्षी का उत्पादन अमेरिका में आनुवंशिक अभियांत्रिकी की नई दिशाओं का ज्ञान।

1976 ई. पुनर्योजी डी.एन.ए. तकनीक के व्यवसायिक उपयोगों के लिए **जीन टैक** नामक प्रथम कम्पनी की स्थापना। संयुक्त राज्य अमेरिका के राजकीय चिकित्सा संस्थान द्वारा आनुवंशिक अभियांत्रिकी की नयी दिशाओं का प्रस्तुतीकरण।

1978 ई. 26 जुलाई को इंग्लैण्ड में प्रथम परखनली शिशु लुइस जॉन का जन्म।

1980 ई. रैंक होविस, मैक डीगल को ब्रिटेन में मानव उपयोग के लिए कवकीय खाद्य सामग्री बेचने की अनुमति। संयुक्त राज अमेरिका में न्यायालय द्वारा आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा प्राप्त सूक्ष्म जीवाणुओं का एकस्वकृत (पेटेंट) कराने का निर्णय।

1981 ई. प्रथम पराजीनी जन्तु (चूहे) की उपलब्धि। एक **क्लोनीय** प्रतिरक्षी का रोग निदान में प्रयोग के लिए अनुमोदन। सं.रा.अ. के सेटस नामक जैवप्रौद्योगिकी प्रतिष्ठान द्वारा 1940 लाख डालर के मूल्य के शेयरों की बिक्री का रिकार्ड।

1982 ई. सं. रा. अ. एवं ब्रिटेन में आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा प्राप्त इन्सुलिन का मधुमेह के इलाज में प्रयोग का अनुमोदन।

1983 ई. जीन हस्तांतरण की एक पौधे से दूसरे में अथवा जीवाणु से पौधे में करने की सुविधा।

1984 ई. पशुओं के रोगों की प्रतिरक्षा के लिए पशु इन्टरफेरॉन के प्रयोग का अनुमोदन।

1989 ई. सभी फसलों के लिए व्यावासायिक रूप से सफल बीज विकसित करने के लिए क्लोनिंग का उपयोग।

1990 ई. कुछ कम्पनियों द्वारा फसलों के नये जीनों पर आधारित नये उत्पादों को विकसित करने का दावा। नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. वाटसन के नेतृत्व में 15 वर्षीय और तीन सौ अरब डालर के बजट वाली 'मानव जीन परियोजना' की शुरुवात।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक मनुष्य को यह ज्ञान नहीं था कि बियर, मदिरा, दही आदि के बनने में जीवाणुओं अथवा एंजाइमों का हाथ होता है, फिर भी वह खाने-पीने के अनेक पदार्थों का स्वाद जीवाणुओं की सहायता से प्राचीन काल से ही करता आया है। यह सारी प्रौद्योगिकी अनुभव के आधार पर थी। इस पूरे काल को जैवप्रौद्योगिकी का प्रथम काल कहते हैं। सन् 1815 में गे-लुजैक द्वारा इथेनॉल और सन् 1897 में लुई पाश्चर द्वारा लैक्टिक अम्ल का किण्वन इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर सत्यापित हो सका। सन् 1881 में शुद्ध जीवाणु समूहों के संवर्धन तथा विभेद

के संरक्षण के तरीकों की जानकारी के साथ ही औद्योगिक समूह जैविकी को गति प्राप्त हुई और जैवप्रौद्योगिकी के दूसरे युग का सूत्रपात हुआ। 1881 में लैक्टिक अम्ल का उत्पादन, सन् 1914-18 के दौरान खमीर उत्पादन के लिए लोह से बने अभिकर्मकों का विकास एवं सन् 1912-14 के दौरान ब्यूटेनॉल तथा एसिटोन का औद्योगिक उत्पादन आरंभ हुआ।

पेनिसिलीन का उत्पादन की प्रक्रिया के साथ जैवप्रौद्योगिकी का तीसरा युग प्रारम्भ हुआ। पेनिसीलियम की खोज 1928 में हुई, पर उसका उत्पादन सन् 1941 में संक्रमण रहित वातित व मिश्रित किण्वकों से सम्भव हो पाया। एसिटिक अम्ल का निमज्जित संवर्धन विधि द्वारा उत्पादन (1949) साइट्रिक अम्ल का निमज्जित संवर्धन विधि द्वारा तरलीकृत किण्वकों का विकास (1967) तथा एक कोशिकीय प्रोटीन उत्पादन के लिए बृहद् आकार के वायु उत्थापक किण्वकों का उपयोग (1984) ऐसे त्वरित विकास के उदाहरण हैं।

जैवप्रौद्योगिकी के चौथे युग का अभी प्रारम्भ हुआ है। अणु-जैविकी एवं अनुवांशिकी के क्षेत्र में हुई वैज्ञानिक क्रांति ने इसका सूत्रपात किया। नये उत्पादों की प्राप्ति इसका पहला अनुप्रयोग था। हाइब्रिडोमा तकनीक द्वारा **एक क्लोनीय** प्रतिरक्षी की प्राप्ति सम्भव हुई तो अनुवांशिकी अभियांत्रिकी द्वारा मानव वृद्धि हारमोन संस्थानों में इस प्रकार के उत्पादों की प्राप्ति के लिए होड़-सी लग गई। नूतन जैवप्रौद्योगिकी के उपकरणों के निर्माण से अणु-जैविकी के क्षेत्र में हुए विकास को बल मिला। डी.एन.ए. की खोज 1869 में मेइशर द्वारा की गई परन्तु इस खोज का औद्योगिक अनुप्रयोग सन् 1953 में वाटसन व क्रिक द्वारा इसकी संरचना,

सन् 1971 में आर्वट, स्मिथ व नायन्स द्वारा इसमें परिवर्तन की खोज के उपरान्त ही सम्भव हो पाई।

आनुवंशिक अभियांत्रिकी के तरीकों के विकास और विभिन्न उद्योगों में उसके अनुप्रयोग के चलते नये कानूनों की आवश्यकता है। इन कानूनों पर खरा उतरने के लिए किण्वन प्रौद्योगिकी में उचित सुधार किए गए। इन खोजों ने जीवाणु के पेटेंट कराने की समस्या व उससे सुरक्षा-जैसे प्रश्नों को खड़ा किया जिसका प्रभाव जैव-अभिकर्मक के अभिकल्पन पर भी पड़ा।

औद्योगिकी सूक्ष्म जैविकी एवं अणु-जैविकी क्षेत्र की जानकारियों का उपयोग स्तनी कोशिका संवर्धन में किया जाने लगा। सन् 1967 के पूर्व स्तनी कोशिकाओं को जीवित अवस्था में रखना सम्भव नहीं था। इसके उपरान्त लम्बित बूद एवं बोतल संवर्धन के द्वारा इन कोशिकाओं को प्रयोगशाला में जीवित रखा जा सका। प्रथम स्तनी कोशिका संवर्धन रोलर बोतल में किया गया। इस पद्धति को आज भी प्रयोग में लाते हैं।

जैवप्रौद्योगिकी के विकास का उद्देश्य है - नये उत्पादन और विक्रय। यदि उत्पादन की बिक्री कठिन या असम्भव हो तो प्रौद्योगिकी व उत्पादन पद्धति दोनों को छोड़ दिया जाता है।

इतना सब विकास होने के बावजूद भी नये विकास की आज भी आवश्यकता है। जिन क्षेत्रों में विकास कार्य हो सकते हैं। उनमें से विलक्षण जीवाणु, विलक्षण उत्पाद, कोशिका संवर्धन की विलक्षण प्रक्रिया, नये पदार्थ एवं वर्तमान उपकरणों/उपस्करों के नूतन अनुप्रयोग आदि प्रमुख हैं।

अध्याय - 19

जैवप्रौद्योगिकी में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के बिना जैवप्रौद्योगिकी का विकास कठिन ही नहीं, असंभव भी है। भारत में जैवप्रौद्योगिकी के लिए जर्मनी, स्विट्जरलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, इज़राइल, स्वीडन, पोलैंड, चीन, क्यूबा, जापान, कजाकिस्तान, जर्मनी के साथ पहले चल रहे द्विपक्षीय कार्यक्रमों के अलावा मिस्र, फ्रांस, जापान, कजाकिस्तान, पोलैंड, रूस, श्रीलंका और ट्यूनीशिया के साथ भी नये कार्यक्रम विकसित किए जा रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, हंगरी, मैक्सिको, नार्वे, रोमानिया तथा स्लोवाकिया के साथ संपर्क स्थापित किए गए हैं।

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) के सदस्य देशों के बीच स्वास्थ्य, कृषि, प्राणि विज्ञानों और पर्यावरण-जैसे क्षेत्रों में जैवप्रौद्योगिकी के विकास में सहयोग का कार्यक्रम चलाया गया है। समूह-15 के विकासशील देशों में औषधि तथा सुगंध पदार्थों का जीन बैंक बनाने के कार्यों में समन्वय स्थापित करने का

उत्तरदायित्व भारत को दिया गया है। भारत अमेरिका टीका कार्यक्रम के अंतर्गत विषाणु जन्य हेपिटाइटिस बी और सी, हैजा, तपेदिक, अतिसार, टाइफाइड, रोटावायरल, पोलियो और ई. कोलाई अतिसार के लिए केन्डीडेड टीका प्रभेद (केन्डीडेड वैक्सीन स्ट्रेन) पेटेंट कर लिया गया है और क्षेत्रीय परीक्षण (फील्ड टेस्ट) के लिए इसका प्रोटोटाइप विकसित करने की एफ.डी.ए. से मान्यता मिल गई है। हेपेटाइटिस सी के लिए दो निदान किट प्रोटोटाइप प्लाज्मा से प्राप्त हेपेटाइटिस बी टीका और हैजा टीका तथा पॉलीसैकेराइड टीका विकसित करने का कार्यक्रम पूर्णता की ओर है।

संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन.ओ.) ने एक अंतर्राष्ट्रीय आनुवंशिक अभियांत्रिकी और जैवप्रौद्योगिकी केंद्र (आई.सी.जी.इ.बी.) की स्थापना की है। इसका एक संस्थान ट्रिएस्टे, इटली तथा दूसरा नई दिल्ली में है। नई दिल्ली केंद्र की स्थापना 1987 में की गई थी।

परिशिष्ट - 1

तकनीकी शब्दों की परिभाषाएं

प्रतिजीवी पदार्थ (एन्टीबायोटिक्स)

सूक्ष्म जीवों द्वारा उत्पादित रासायनिक पदार्थ जो जीवाणु एवं अन्य सूक्ष्म जीवों के विकास को रोकता और नष्ट करता है। प्रथम प्रतिजीवी पदार्थ 'पेनीसीलिन' था जिसे विश्व भर में मान्यता मिली। प्रतिजीवी पदार्थ फफूंदी, जीवाणु, रिकेट्सिया आदि के खिलाफ प्रभावी कार्य करता है।

'उल्बबेधन' (एम्नियोसेन्टेसिस)

चिकित्साविज्ञान की यह तकनीक जिसकी सहायता से गर्भस्थ शिशु के आनुवंशिक रोग का पता लगाया जाता है। इस तकनीक में गर्भ से एम्निओटिक द्रव्य निकाला जाता है और इसका संवर्धन करके इन कोशिकाओं का आनुवंशिक परीक्षण किया जाता है तथा आनुवंशिक रोगों की जानकारी प्राप्त की जाती है। शिशु के लिंग का परीक्षण भी इसी विधि से किया जाता है।

प्रतिकारी पिण्ड (एन्टीबॉडी)

रक्त, सीरम में पाया जाने वाला एक प्रोटीन जो शरीर में प्रविष्ट होने वाले प्रतिजन के विरूद्ध बनता है। और प्रतिजन को

नष्ट करता है। अंगों के प्रतिरोपण की असफलता के पीछे भी प्रतिकारी पिण्ड का हाथ रहता है। यह प्रतिरोपित हुए अंगों को विदेशी (बाहर का) समझकर उस पर आक्रमण कर देता है फलतः शरीर अंगों को अस्वीकार कर देता है।

प्रतिजन (एन्टीजन)

ऐसे पदार्थ जिन्हें शरीर का प्रतिरक्षण तन्त्र बाहरी एवं खतरनाक समझता है तथा इनके विरूद्ध प्रतिकारी पिण्ड बनाता है।

रोगाणु रोधक (एन्टीसेप्टिक)

ऐसी दवा जिनका प्रयोग मनुष्य या पशुओं के शरीर पर सूक्ष्म जीवों को नष्ट करने के लिए किया जाता है, जैसे- आयोडीन, पोटैशियम आयोडाइड, इथाइल एल्कोहॉल तथा आइसोप्रोपिल एल्कोहाल इत्यादि।

प्रतिविष (एण्टीटॉक्सिन)

शरीर द्वारा उत्पन्न किया गया एक प्रतिकारी पिण्ड जो शरीर में जीवाणु आदि द्वारा उत्पन्न विष को समाप्त करता है।

जैविक अपघटन (बायोडिग्रेडेशन)

जीवों द्वारा जटिल जैविक पदार्थों को अपघटित करके सरल जैविक पदार्थों का निर्माण। अपघटन करने वाला जीव, जैसे- जीवाणु, फफूंदी, अन्य सूक्ष्म जीव अपघटनकारी कहलाते हैं।

जैविक घड़ी (बायलोजिलकल क्लॉक)

सभी जीवों में समय धारण करने को अन्तःमिश्रित व्यवस्था का एक रूप है। यह उनके पर्यावरण द्वारा नियमित होने वाले

परिवर्तनों, जैसे रात-दिन चक्र के साथ बदलती रहती है। निद्राचक्र जागृत अवस्था और कई अन्य शारीरिक क्रियाएँ करीब 24 घंटे की अवधि में दोहराई जाती हैं और इसलिए इसे सिरकाडियन लय भी कहा जाता है।

जैव विविधता (बायोडायवर्सिटी)

सभी जीवित पौधों, प्राणियों व सूक्ष्मजीवों का कुल योजित सम्पूर्णता है। जैव विविधता अनिवार्य है। क्योंकि मनुष्य जैविक मण्डल के बनाये और अन्य मूल आवश्यकताओं विशेषकर भोजन की आपूर्ति के लिए अन्य प्रजातियों पर निर्भर है। मनुष्य के लिए जैव विविधता का संरक्षण सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि पौधों व प्राणी हमको ज्ञात व अज्ञान कई आर्थिक तथा अनिवार्य सेवायें जैसे रोगों का निदान, हमारी फसलों के उन्नयन के लिए जीनों को उपलब्ध करते हैं।

डी.एन.ए.

यह 'डी. ऑक्सीरिबोन्यूक्लिक अम्ल' है। यह आनुवंशिकता में बहुत महत्वपूर्ण स्थान वाला स्थूल कण है जो अपना निर्माण स्वयं करता है। यह पौधों व जंतुओं की आनुवंशिकता का निर्धारण करने वाले तत्व गुणसूत्र का मुख्य अवयव होता है।

जीन

यह आनुवंशिकता की मूल इकाई है। इसे डी.एन.ए. के एक खण्ड की तरह परिभाषित किया जा सकता है, जिसका अपना विशिष्ट कार्य होता है। यह कार्य किसी विशेष प्रोटीन या प्रोटीन के किसी मुख्य घटक आदि की कूटलेखन हो सकता है या इसका

कार्य नियंत्रक का हो सकता है जो अन्य जीवों की क्रियाविधि का नियंत्रण कर सके।

अनुवांशिक कूट (जेनेटिक कोड)

डी.एन.ए. अणु में न्यूक्लिओटाइड के अनुक्रम को आनुवंशिक कूट कहते हैं। अपनी अम्ल हेतु न्यूक्लिओटाइड की श्रृंखला के रूप में कूट होता है। एक कूट में न्यूक्लिओटाइड के तीन अणु सहगर्मिता दर्शाते हैं।

जीन अभियांत्रिकी (जीन इंजीनियरिंग)

जीन अभियांत्रिकी वह तकनीक है जिसमें डी.एन.ए. की संरचना में परिवर्तन किया जाता है। इसके तहत रिस्ट्रेक्शन एंजाइम की सहायता से डी.एन.ए. में से किसी विशिष्ट अनुक्रम को काट कर अलग करना तथा डी.एन.ए. लाइगेज एंजाइम की सहायता से अन्य अनुक्रम को जोड़ना आदि प्रक्रिया शामिल हैं।

प्रतिरोधीकरण

यह किसी व्यक्ति में कृत्रिम साधनों से प्रतिरोध उत्पन्न करता है। सक्रिय प्रतिरोधीकरण शरीर में मुँह या सुई द्वारा विशेष रूप से उपचारित जीवाणु, विषाणु या अन्य विषाक्त पदार्थों के प्रवेश के जरिये होता है। इसका उद्देश्य प्रतिरूपी पिण्डों के उत्पादन को प्रेरित करता है। निष्क्रिय प्रतिरोधीकरण के लिए सूई द्वारा शरीर में पहले ही विकसित प्रतिरूपी पिण्डों का प्रवेश कराया जाता है।

उत्परिवर्तन (म्यूटेशन)

रासायनिक, विकिरण आदि कारकों के कारण जीनीय संरचना में होने वाले परिवर्तन को उत्परिवर्तन कहते हैं। यह दो प्रकार का

होता सकता है। जीनीय उत्परिवर्तन तथा गुणसूत्रीय उत्परिवर्तन जो कि क्रमशः जीन तथा गुणसूत्र में होने वाले परिवर्तन को बताता है।

जैविक संदीप्ति (बायोलूमिनेसेन्स)

जैविक संदीप्ति जुगनू, मक्खी, कई गहरे समुद्र की मछलियाँ, कुछ कृमि तथा कवक जैसे प्रकाश जनक जीवों द्वारा बिना कुछ भी ऊष्मा उत्पादन के प्रकाश का उत्सर्जन है। अधिकतर जीवों में जैविक संदीप्ति के लिए जिम्मेदार पदार्थ 'ल्यूसिफेरिन' है जो ल्यूसिफरेस जीव उत्प्रेरक के द्वारा आक्सीकृत होता है।

एगर

यह समुद्री लाल शैवाल से प्राप्त एक जिलैटिन-सदृश बहुसर्कराइड पदार्थ है जिसका प्रयोग सूक्ष्मजीवों को उगाने के लिए ठोस माध्यम बनाने में होता है।

कवक (फंगस)

यह पर्णहरितहीन एक कोशिकीय या तंतुयी एवं शाखीय कायिक संरचना वाला यूकैरिओटिक जीव होता है जो अलैंगिक और लैंगिक दोनों ही रूप में जनन करता है।

कवकमूल (माइकोराइजा)

उच्च पौधों की जड़ों के साथ कवक तंतुओं का सहजीवी साहचर्य जो कुछ वर्षों की सामान्य वृद्धि के लिए आवश्यक होता है।

कवकरोधी (फंजीस्टेटिक)

कवकों को मारे बिना उनकी वृद्धि को रोकने वाला पदार्थ।

कवकविज्ञान (माइकोलॉजी)

वह विज्ञान जिसमें कवकों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

जीव विष (टॉक्सिन)

सूक्ष्म जीव से उत्पन्न एक विषैला यौगिक जिसका पौधों या जंतुओं पर विषैला प्रभाव पड़ता है।

जीवे (इन विवो)

जीवित परपोषी में

जीवाणु (बैक्टीरिया)

एक कोशिकीय, छोटा (0.5-2.0μ) चल या अचल सूक्ष्मदर्शी जीव जिसमें पर्णहरित का आभाव होता है और जो द्विविभाजन द्वारा बढ़ता है।

जीवाणुनाशी

ऐसे रासायनिक यौगिक जो जीवाणुओं को मारने या नष्ट करने में समर्थ होते हैं।

जीवाणुरोधी (बैक्टीरियोस्टैटिक)

ऐसा रसायन या भौतिक कारक जो जीवाणु को मारे बिना उसकी वृद्धि या बहुगुणन को रोकता है।

जीवाणुभोजी (बैक्टीरियोफेज)

ऐसा विषाणु जो विशिष्ट जीवाणु को संक्रमित करता है और प्रायः इसे नष्ट कर देता है।

सूत्रकृमि (निमैटोड)

सूक्ष्मदर्शीय, कृमिसदृश जंतु जो जल या मृदा में मृतजीवी रूप में अथवा पौधों या प्राणियों में परजीवी रूप में रहता है।

निवेशद्रव्य (इनाकुलम)

रोगजनक का वह भाग (जैसे कवक, बीजाणु, जीवाणु कोशिका) जो संक्रमण क्षेत्र पर स्थानांतरित हो सकता है और रोग के प्रकीर्णन एवं आरंभ करने में समर्थ होता है।

परजीवी (पैरासाइट)

ऐसे जीव जो दूसरे परपोषित जीव से अपना आहार प्राप्त करता है।

परपोषित (हेटरोट्रापिक)

ऐसे जीव जो अपना आहार दूसरे जीव या मृतक पदार्थ से प्राप्त करता है और अजैव स्रोत से जैव पदार्थों का संश्लेषण करने में असमर्थ रहता है।

परपोषी (होस्ट)

एक जीवित जीव, जिस पर परजीवी आक्रमण करता है और उससे अपना आहार प्राप्त करता है।

प्लाज्मिड

जीवाणु कोशिकाओं में मिलने वाले डीऑक्सी रिबोन्यूक्लीय अम्ल (डी.एन.ए.) के वाह्य क्रोमोसोम खंड जो रोगजनक और जीवाणु परपोषी होते हैं और इसके रोगवाहक के रूप में कार्य करते हैं।

फाइटोएलेक्सिन

रोगजनक के साथ परपोषी कोशिकाओं के सम्पर्क में आने पर निर्मित एक ऐसा पदार्थ (जीव विष), जो अति संवेदनशील ऊतकों पर रोगजनक की वृद्धि या विकास को रोकता है।

बीजाणु (स्पोर)

एक सूक्ष्म जनन इकाई जो बीज के रूप में रहती है परंतु इसमें पहले से बना भ्रूण नहीं होता है।

माइकोप्लामा सदृशजीव (माइकोप्लाज्मा लाइक आरगेनिज्म)

भितिहीन प्रोकैरिओटिक्स सूक्ष्म जीव जो विषाणु व जीवाणु के मध्यवर्ती, विभिन्न प्रकार और रूप के होते हैं।

रोगजनक (पैथोजन)

पौधों में रोग उत्पन्न करने वाला कारक

रोगवाहक (बेक्टर)

एक ऐसा प्राणी जो रोगवाहक को संचरित करने में समर्थ होता है।

विषाणु (वायरस)

एक न्यूक्लिक अम्ल कोड एवं एक प्रोटीन आवरण से युक्त, अति सूक्ष्मदर्शीय, अविकल्पी परजीवी और रोग का संक्रामक रोगजनक।

बाइरॉयड (विषाणुभ)

अनावृत न्यूक्लिक अम्ल का कण जो विषाणु के समान ही होता है परंतु इसमें प्रोटीन आवरण का आभाव होता है।

वाइरियोन

एक पूर्ण वाइरस कण।

वाहक (कैरियर)

एक ऐसा पौधा या जीव जो एक संक्रमक को रखता तो है परंतु इस पर उस कारक से उत्पन्न रोग के स्पष्ट लक्षण नही होता है।

सूक्ष्म जीव (माइक्रोऑर्गेनिज्म)

सूक्ष्मीदर्शीय जीव।

संक्रमण (इनफेक्शन)

परपोषी में रोगजनक का स्थापित होना।

एंजाइम

एक कार्बनिक उत्प्रेरक जो एक जीव, पौधा या जंतु के भीतर उत्पन्न होता है और जैव-रासायनिक अभिक्रियाओं को प्रभावित करता है।

निर्वंश (टर्मिनेटर)

टर्मिनेटर एक ऐसा जीन है, जिसे किसी फसल की बीज में डाल देने पर वह उस बीज की प्रजनन शक्ति का स्विच बंद कर देता है। इस जीन का उपयोग कर दिए जाने के बाद बीज से पौधे तो उत्पन्न होते हैं परंतु उनमें फूल या फल नहीं लगते हैं।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण

मिट्टी में पाए जाने वाले कुछ जीवाणु, जैसे- एजोटोवैक्टर, क्लोस्ट्रीडियम, राइजोबियम आदि हवा से नाइट्रोजन लेकर नाइट्रोजन यौगिकों में परिवर्तित कर देते हैं और फिर उन्हें मिट्टी में स्थिर कर देते हैं, जिसे नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहते हैं। नाइट्रोजन स्थिरीकरण के बाद पौधे आसानी से नाइट्रोजन प्राप्त कर सकते हैं।

ऊतक संवर्धन

ऊतक संवर्धन में किसी प्रजाति के पौधे के विशेष भाग द्वारा उसमें ऊतकों से अनेक पौधों का विकास किया जा सकता है। इस तकनीक के प्रयोग से जहाँ पूर्ण विकसित बीज की आवश्यकता नहीं होती वही प्रयोगशाला में अधिक मात्रा में रोपण हेतु पौधे उपलब्ध कराये जा सकते हैं। अनार, केला, इलायची, गन्ना आदि की अनेक नई जातियाँ ऊतक संवर्धन द्वारा उत्पन्न की जा चुकी है।

पुनर्योजी डी.एन.ए.

यह तकनीक जैव तकनीकी की सबसे महत्वपूर्ण तकनीक है, जिसके द्वारा किसी इच्छित डी.एन.ए. को दूसरा प्राणि मुख्यतः

ई. कोलाई में प्रतिरोपित कर जीन के द्वारा अभीष्ट पदार्थ का उत्पादन किया जा सकता है। कृषि के क्षेत्र में पादप जातियों का अभीष्ट पदार्थ का उत्पादन किया जा सकता है। कृषि के क्षेत्र में पादप जातियों का विकास, उत्तम कोटि के उत्पादक बीज रोगों से प्रतिरोधक क्षमता का विकास, जीन प्रतिस्थापन द्वारा जैविक नाइट्रोजन का संग्रहण वृद्धि हारमोनो का विकास खरपतवार व कीट प्रतिरोधी प्रजातियों का विकास, आदि से कृषि क्षेत्र में जैवप्रौद्योगिकी द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए जा सकते हैं।

आर.एन.ए.

इसे रिबोन्यूक्लीक अम्ल कहते हैं। यह डी.एन.ए. द्वारा दी गई सूचना को कोशिकाओं के कोशिका द्रव्य (साइटोप्लाज्म) में पहुँचाता है और आवश्यकतानुसार प्रोटीन का निर्माण करता है। यह कोशिकाओं और जीन के विकास के लिए जरूरी होता है।

बायोमास (जीव-भार)

यह जैव ऊर्जा का एक रूप है। जैविक पदार्थों का उपयोग ऊर्जा-उत्पादन के लिए किया जाता है। पादप एंजाइम, जीवाणु आदि ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत है। जैव पदार्थों से ऊर्जा प्राप्त करने की अनेक विधियां प्रचलित हैं लेकिन यदि वैज्ञानिक तकनीक से जैवाण्विक संवर्द्धन द्वारा मेथेन का निर्माण कर अथवा यीस्ट प्रकिण्व से इथेनॉल का निर्माण कर ऊर्जा प्राप्त की जाती है तो इससे अधिक ऊर्जा भी प्राप्त होती है और प्रदूषण भी कम फैलता है। बायोमास या जैव ऊर्जा मुख्यतः पौधों और कूड़े-कचड़ों से प्राप्त किया जाता है। पौधों से वायोमास प्राप्त करने के लिए तीव्र

विकास वाले पौधों को बेकार पड़ी जमीन पर उत्पादित किया जा रहा है। इससे प्राप्त लकड़ियों के गैसीकरण से ऊर्जा प्राप्त होती है।

बायोगैस

बायोगैस को मेथेन कहा जाता है। यह गैस जीवों में उत्सर्जित पदार्थों, पादपों और उद्योगों के अवशिष्ट पदार्थों से प्राप्त किया जाता है। अवशिष्ट पदार्थों को विशेष प्रकार से बनाए गए डाइजेस्टर में कम तापमान पर चलाया जाता है और उससे सूक्ष्म जीवाणु प्राप्त किए जाते हैं। प्राप्त सूक्ष्म जीवाणु से ही ऊर्जा मिलती है। बायोगैस का प्रयोग मुख्य रूप से घरों में खाना पकाने तथा प्रकाश की व्यवस्था करने में ही हो रहा है।

कीटरोधिता (इनसेक्ट रेसिस्टेस)

कीटरोधिता वह गुण है जिससे एक ही पादप जातियों (स्पीशीज) के कुछ विभेदों में नाशीकीटों के आक्रमण के कारण नुकसान अन्य विभेदों की अपेक्षा कम होती है। कीटरोधी पौधों के उत्पादन के लिए मुख्य रूप से निम्न दो पराजीनी का स्थानांतरण किया गया है (1) **वैसिलस थुरिजिएसिस** (2) **ट्रिप्सिन।**

सूक्ष्म प्रवर्धन (माइक्रो प्रोपेगेशन)

ऊतक संवर्धन विधि से पौधों के कायिक या वानस्पतिक प्रवर्धन को सूक्ष्म प्रवर्धन कहा जाता है क्योंकि इस विधि में बहुत छोटे कतावों का उपयोग करके बहुत पौधे उत्पादित करते हैं।

क्लोनन (क्लोनिंग)

कोशिका के समसूत्रण (माइटोसिस) से प्राप्त सभी कोशिकाएं एक क्लोन कहलाती है और क्लोन प्राप्त करने की प्रक्रिया को क्लोनन कहते हैं।

जैव नियंत्रण कारक (बायो कण्ट्रोल एजेन्ट)

सूक्ष्म जीवों के उपयोग से कीटों, खरपतवारों और रोगों का नियंत्रण करने को जैविक नियंत्रण कहते हैं और इन सूक्ष्म जीवों को जैव नियंत्रण कारक कहते हैं।

पुनर्योजन (रिकाम्बिनेशन)

विभिन्न विभेदों में उपस्थित जीनों में नए संयोजन (काम्बिनेशन) उत्पन्न होना पुनर्योजन कहलाता है।

पुनर्योगज प्रोटीन

किसी जीव में स्थानांतरित पराजीन द्वारा उत्पादित प्रोटीन को पुनर्योगज प्रोटीन कहते हैं। ये प्रोटीन उत्पादित प्रोटीन स्वयं ही व्यापारिक महत्व के होते हैं, जैसे- इंसुलिन, इटरफेरॉन आदि का जीवाणु में उत्पादन।

पराजीन (ट्रांसजीन)

आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा कोशिकाओं में प्रवेश कराए जाने वाले जीन को पराजीन कहते हैं।

डी.एन.ए. अंगुलि-छापन

किसी व्यष्टि (इनडिविजुअल) या विभेद के डी.एन.ए. का आर.एफ.एल.पी. पद्धति एक अत्यंत बहुरूपी (प्रोब) की सहायता से बनाना डी.एन.ए. अंगुलि छापन कहलाता है।

इंटरफेरान

इंटरफेरान विषाणु संक्रमित कोशिकाओं द्वारा उत्पादित वे प्रोटीन होते हैं जो अन्य स्वस्थ कोशिकाओं को विषाणुओं से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

विषाणु टीके (वायरस वैक्सीन)

क्षीणीकृत रोगजनकों रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म जीव से युक्त निलंबन जिसका उपयोग जन्तुओं में रोग रोधक क्षमता उत्पन्न करने के लिए किया जाता है, टीका कहते हैं। किसी जन्तु के शरीर में किसी टीके को प्रविष्ट कराने को टीकाकरण कहते हैं। टीकाकरण मुंह से अथवा सिरा, मांसपेशी या त्वचा के नीचे इजेक्शन आदि से दिया जाता है।

अंग संवर्धन (आर्गन कल्चर)

अंगों या उसके अंशों को इस प्रकार पात्रे (इन विट्रो) संवर्धन करना, जिससे वे जीवे (इन विवो) अंगों के समान बने रहें, अंग संवर्धन कहलाता है।

हाइब्रिडोमा

एक बी-लिम्फोसाइट और एक माएलोमा कोशिका के संगठन से प्राप्त संकर कोशिका को हाइब्रिडोमा कहते हैं।

राइबोजाइम

रासायनिक अभिक्रियाओं का उत्पेरण करने वाले आर.एन.ए. अणुओं को राइबोजाइम कहते हैं।

गुणसूत्र (क्रोमोसोस)

आनुवंशिक सूचनाएं एक लंबे तुर्करूपी धागे में रहती है जो डी.एन.ए. तथा प्रोटीन से बने होते हैं। इस संरचना को गुणसूत्र कहते हैं। ये गुणसूत्र प्राणियों के केंद्रक में पाए जाते हैं। मानव में 46 गुणसूत्र पाए जाते हैं।

परिशिष्ट - II

तकनीकी शब्दों की सूचियाँ

A. D. P.	एडिनोसिन डाई फास्टफेट
Agent	कारक
Alga	शैवाल
Allergy	प्रत्यूर्जता
Amniocentesis	उल्बबेधन
Androgenesis	पुंजनन
Angiogenesis	वाहिका जनन
Animal	प्राणी, जन्तु
Antagonist	विरोधी
Antibiotic	प्रतिजैविक
Antibody	प्रतिरक्षा
Antigen	प्रतिजन
Antiseptic	रोगाणुरोधक
Antitoxin	प्रतिविष

Aromatic	सुगन्धित
A. T. P.	एडिनोसिन ट्राई फास्फेट
Bacteria	जीवाणु
Bacteriacide	जीवाणुनाशी
Bacteriophase	जीवाणु भोजी
Bacillous	दंडाणु, बैसिलस
Base	क्षार
Base Pair	क्षार युग्म
Biological	जैव, जैविक
Biodegradation	जैविक अपघटक
Biodiversity	जैव विविधता
Biology	जीव विज्ञान, जैविकी
Biotechnology	जैवप्रौद्योगिकी
Bioluminessence	जैविक संक्षिप्ति
Blood	रक्त, रूधिर
Biofertilizer	जैव उर्वरक
Biopesticide	जैव कीटनाशी
Budding	मुकुलन
Cardiomycyte	हृदय के ऊतक
Carrier	वाहक
Cell	कोशिका

Engineering	अभियंत्रिकी
Endosperm	भ्रूणकोष
Embryo	भ्रूण
Embryosis	भ्रूण उद्भव
Epithelial Cell	उपकला कोशिकायें
Extract	निष्कर्ष
Factor	कारक
Fermentation	किण्वन
Fertilization	निषेचन
Fibroblast	रेशकोरक
Fungus	कवक
Fungicide	कवकनाशी
Fusion	संलयन
Fixation	स्थिरीकरण
Gamete	युग्मक
Gene	जीन
Generation	पीढ़ी, जनन
Gene therapy	जीन चिकित्सा
Genetic	आनुवांशिक
Genetic Code	अनुवांशिक कूट
Gentic Engineering	अनुवांशिक अभियंत्रिकी

Gene Transfer	जीन अंतरक्ष
Genic	जीनी
Genital	जननिक, जननांगी
Genotype	जीन रूप
Genome	संजीन, जीनोम
Germline	जनन परम्परा
Germplasm	जनन द्रव्य
Growth factor	वृद्धि कारक
Gynogenesis	जाया जनन
Heapatocytes	यकृताणु
Helix	कुडिलिनी
Heredity	अनुवांशिकता
Heterotropic	परपोषित
Hepatitis 'B' Virus	यकृतशोध बी विषाणु
Host	परपोषी, पोषी
Homozygous	समयुग्मज
Human genome Project	मानव संजीन परियोजना
Hybrid	संकर
Hybridization	संकरण
Hybridoma	संकरार्बुद
Immune	प्रतिरक्षित

Resistance	प्रतिरोध
Recombination D.N.A. technology	पुनर्योजन डी.एन.ए. तकनीक
R.N.A.	रिबोन्यूक्लीअम्ल
Root-knot Disease	मूल ग्रन्थि रोग
Sequence	क्रमबद्ध
Sequencing	क्रमबद्धीकरण
Somatic	कायिक
Somatic cell	कायिका कोशिका
Sperm	शुक्राणु
Sterlize	निर्जीविकृत
Stem cell	मूल कोशिका
Strain	विभेद
Sugar	शर्करा
Symbiosis	सहजीवन
Termination	समापन
Terminatorgene	बाँझ, निर्वेश, समापन जीन
Test	परीक्षण
Tissue	ऊतक
Tissue Culture	ऊतक संवर्धन
Toxic	आविषालु

Toxin	आविष
Transfer	अंतरण
Transgenic	पराजीनी
Transformation	रूपान्तरण
Transplantation	प्रत्यारोपण
Triploid	त्रिगुणित
Triplet	त्रिक
Translocation	स्थानान्तरण
Transfection	पारसंक्रण
Unit	इकाई
Vaccine	टीका
Vascular	संवहन
Vector	रोगवाहक कारक
Virus	विषाणु
Wilt	म्लानि
Zoology	प्राणि विज्ञान
Zygote	युग्मज

परिशिष्ट – III

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली-निर्माण के सिद्धांत

1. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेज़ी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं :—

(क) तत्वों और यौगिकों के नाम जैसे हाइड्रोजन, कार्बन डाइ-ऑक्साइड आदि;

(ख) तौल और माप की इकाइयाँ और भौतिक परिमाण की इकाइयाँ जैसे डाइन, कैलॉरी, ऐम्पियर आदि;

(ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं, जैसे-मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बॉयकाट (कैप्टेन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ० गिलोटिन), गेरीमैंडर (मि० गेरी), एम्पियर (मि० एम्पियर), फ़ारेनहाइट तापमान (मि० फ़ारेनहाइट) आदि;

(घ) वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली ;

(ङ) स्थिरांक जैसे π, g, आदि;

(च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है जैसे रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि;

(छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे साइन, कोसाइन, टेन्जेन्ट, लॉग आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)।

2. प्रतीक, रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएँगे परंतु संक्षिप्त रूप नागरी और मानक रूपों में भी, विशेषतः साधारण तौल और माप में लिखे जा सकते हैं, सेन्टीमीटर का प्रतीक जैसे cm. हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु नागरी संक्षिप्त रूप से० मी० हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों में केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक, जैसे cm. ही प्रयुक्त करना चाहिए।

3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं जैसे : क, ख, ग या ब, स परंतु त्रिकोणमितीय संबंधों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे साइन A, कॉस B आदि।

4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यतः अनुवाद किया जाना चाहिए।

5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार-विरोधी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो :—

(क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और

(ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

7. ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान

175

पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं जैसे telegraph/telegram के लिए तार, continent के लिए महाद्वीप, post के लिए डाक आदि, इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।

8. अंग्रेज़ी, पुर्तगाली, फ़्रांसीसी आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे टिकट, सिगनल, पेंशन पुलिस, ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स आदि, इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।

9. **अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण** : अंग्रेज़ी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएँ जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।

10. **लिंग** : हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

11. **संकर शब्द** : पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे guaranteed के लिए 'गारंटित', classical के लिए 'क्लासिकी', codifier के लिए 'कोडकार' आदि, के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं, यथा- सुबोधता, उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

12. **पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास** : कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच हाइफ़न लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहाँ तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक' आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है।

13. **हलंत** : नए अपनाए हुए शब्दों में आवश्यकतानुसार ्हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

14. **पंचम वर्ण का प्रयोग** : पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए परंतु lens, patent आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट या पेटेण्ट न करके लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए।

परिशिष्ट – IV

आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द-संग्रहों की सूची

क्र०सं०	शब्द-संग्रह	मूल्य
1.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान, खंड-1, 2 (पृ० 2058)	174.00
2.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ० 819)	38.50
3.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान, खंड-1, 2 (पृ० 1297)	292.00
4.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ० 700)	132.00
5.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : कृषि विज्ञान (पृ० 223)	278.00
6.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषजविज्ञान, नृविज्ञान	239.00
7.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ० 240)	48.50
8.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी (पृ० 104)	48.00
9.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत, यांत्रिक) (पृ० 253)	57.00
10.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी-2 (पृ० 186)	34.00

विषयवार शब्दावलियाँ

1.	मानविकी शब्दावली-(नृविज्ञान) (पृ० 179)	10.00
2.	कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली (पृ० 337)	87.00
3.	इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली (पृ० 378)	55.00
4.	वणिज्य शब्दावली (पृ० 172)	259.00
5.	समेकित रक्षा शब्दावली	284.00
6.	अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	30.00
7.	भाषाविज्ञान शब्दावली (अग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (पृ० 249)	113.00
8.	बृहत प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	निःशुल्क
9.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	निःशुल्क
10.	पशुचिकित्सा विज्ञान शब्दावली (पृ० 174)	82.00
11.	लोक-प्रशासन शब्दावली (पृ० 98)	52.00
12.	अर्थशास्त्र शब्दावली (मानविकी शब्दावली-9) (पृ० 96)	4.40
13.	नृविज्ञान शब्दावली (पृ० 198)	10.00
14.	वानिकी शब्दावली (पृ० 62)	6.50
15.	खेलकूद शब्दावली (पृ० 103)	10.25
16.	डाकतार शब्दावली (पृ० 126)	11.60
17.	रेलवे शब्दावली (पृ० 56)	2.00
18.	गुणता नियंत्रण शब्दावली (पृ० 67)	38.00
19.	रेशम विज्ञान शब्दावली (पृ० 85)	50.00
20.	गणित की मूलभूत शब्दावली (पृ० 135)	निःशुल्क

21.	कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ० 115)	निःशुल्क
22.	भूगोल की मूलभूत शब्दावली (पृ० 156)	निःशुल्क
23.	भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ० 141)	निःशुल्क

शब्द-संग्रह

1.	कोशिका-जैविकी शब्द-संग्रह (पृ० 197)	62.00
2.	गणित शब्द-संग्रह (पृ० 357)	143.00
3.	भौतिकी शब्द-संग्रह (पृ० 536)	119.00
4.	गृहविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ० 144)	60.00
5.	रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह (पृ० 167)	-
6.	भूगोल शब्द-संग्रह (पृ० 369)	200.00
7.	खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	-
8.	भूविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ० 328)	88.00
9.	संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह (पृ० 48)	15.00
10.	पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (पृ० 184)	12.25

आयोग द्वारा प्रकशित पाठमालाएँ/ मोनोग्राफ

क्र०सं०	शब्द-संग्रह	मूल्य
1.	ऐतिहासिक नगर	195.00
2.	प्राकृतिक व सांस्कृतिक नगर	109.00
3.	समुद्री यात्राएँ	79.00
4.	विश्व दर्शन	53.00
5.	अपशिष्ट प्रबंधन	17.00
6.	कोयला : एक परिचय	294.00
7.	वाहित मल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
8.	पर्यावरणी प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन	23.50
9.	रत्न विज्ञान	115.00
10.	2-दूरीक एवं 2-मानकित समाष्टेयों में संपात एव स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
11.	पराज्यामितीय फलन	90.00
12.	ऊर्जा: संसाधन और संरक्षण	105.00

प्रकाशनाधीन

13. इलेक्टॉन सूक्ष्मदर्शी
14. मैग्नेसाइट-एक भूवैज्ञानिक अध्ययन
15. स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन
16. स्वास्थ्य दीपिका
17. समकालीन भारतीय दर्शन के मानववादी चिंतक
18. भारत में कृषि का विकास
19. मृदा एवं पादप पोषण
20. हिंद महासागर - भविष्य की आशा
21. जैव-प्रौद्योगिकी - अनुसंधान एवं विकास

MGIPMRND—2884HRD—1.11.2003.

PED. 848 (Hindi)
600-2003 (DSK-II)

मूल्य : देश में रु॰ 134.00, विदेश में £ 1.97 या $ 2.79

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित तथा
नियन्त्रक मुद्रण द्वारा प्रकाशित, दिल्ली-2004।